प्रिय शिष्य तथा सहयोगी
डॉ० भूपरालवल जी
को
सस्नेह
[signature]
६-११-७८

हिन्दी का
भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन

डॉ० मुहम्मद अयूब खाँ
रीडर, स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर

बी० एन० प्रकाशन, श्रीनगर

प्रकाशक :

बी० एन० प्रकाशन

द्वारा नार्मल प्रेस, लाल चौक
श्रीनगर, कश्मीर।

मुद्रक :— नार्मल प्रेस, लाल चौक,
श्रीनगर, कश्मीर

वितरक :— कपूर ब्रदर्स, बुकसेलर्स
लाल चौक, श्रीनगर, कश्मीर।

मूल्य :— १५ रु० (सजिल्द)
१२.५०

अनुक्रम

अभिशंसा

—डॉ० रमेशकुमार शर्मा

'हिन्दी का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन' के माध्यम से डा० मुहम्मद अयूब-खां ने हिन्दी भाषा को उसकी सम्पूर्णता में देखने का सफल प्रयास किया है। समग्र अध्ययन के लिए एक सम्पृक्त और तदनुकूल वैज्ञानिक दृष्टि का प्रयोग इस कृति की विशेषता है और वह निस्सन्देह प्रशंसनीय है। व्यावहारिक पक्ष को ध्यान में रखते हुए, भाषा-विज्ञान के सिद्धांतों को स्पष्ट करते हुए हिन्दी भाषा का विकास प्रस्तुत किया गया है। व्यापक और गम्भीर अध्ययन के फल-स्वरूप हिन्दी भाषा का व्यवस्थित एवं संतुलित महत्व प्रतिपादित करने में डॉ० खान सफल हुए हैं।

यह रचना खड़ीबोली के स्वरूप तथा उसके सम्बन्ध में उठने वाली अनेक भ्रांतियों को दूर करती है। उर्दू तथा वर्तमान हिन्दी के विकास का एकात्म रूप सिद्ध करते हुए डॉ० 'प्रेमी' ने अपनी निस्संग दृष्टि का परिचय दिया है। हिन्दी प्रत्ययों की व्युत्पत्ति तथा विकास का अध्ययन पूर्ण रूप से मौलिक तथा छात्रोपयोगी होने के कारण श्लाघनीय भी है।

पुस्तक में भाषा का माध्यम बहुत वैज्ञानिक है। भाषा सरल और सुबोध है। सभी प्रकार से यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। मैं डॉ० खाँन को इस सफल प्रयास के लिए बधाई देता हूँ।

रमेश कुमार शर्मा
एलएल० बी०, एम० ए०, पी-एच० डी० डी० लिट्
आचार्य तथा अध्यक्ष
स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय
श्रीनगर, कश्मीर
भारत

पूर्व-कथन

भाषा और भाषा-विज्ञान

भाषा एक सामाजिक संस्था है जिसमें प्रतीकों की व्यवस्था द्वारा विचारों को व्यक्त किया जाता है। भाषा-विज्ञान प्रतीक-विज्ञान का वह अंग है जिस में यह पता लगाना होता है कि प्रतीक कैसे बनते हैं, उनकी व्युत्पत्ति और विकास कैसे होता है तथा किन नियमों द्वारा अनुशासित होते हैं। भाषा वैज्ञानिक का कार्य यह पता लगाना है कि प्रतीक सम्बन्धी तथ्यों के कौनसे तत्व भाषा के प्रतीकों की एक विशेष व्यवस्था बनाने में सहायक होते हैं। भाषा ही एक ऐसी वस्तु है जिसके आधार पर हम प्रतीक की समस्या को ठीक-ठीक समझ सकते हैं। भाषा-विज्ञान की विशिष्ट विषय वस्तु प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में विद्यमान एक सामाजिक उपज अर्थात् भाषा है। इस सामाजिक उपज का रूप भिन्न-भिन्न भाषाधार समूहों में पृथक्-पृथक् होता है। इसलिए एक भाषा-वैज्ञानिक के लिए अधिक से अधिक भाषाओं का परिचय प्राप्त करना आवश्यक होता है ताकि उनके निरीक्षण तथा तुलना के आधार पर जो सर्वव्यापी है और जो सीमित है, उसका ठीक-ठीक निर्धारण किया जा सके। भाषा विज्ञान में ध्वन्यात्मक प्रतीक (उच्चरित रूप) की अपेक्षा लिपि प्रतीक (लिखित बिम्ब) को ही अधिक महत्व दिया जाता है। लिपि प्रतीक के दो रूप हैं :— विचार-चित्रणात्मक और ध्वन्यात्मक। विचार-चित्रणात्मक में एक शब्द के लिए केवल एक ही प्रतीक का व्यवहार होता है और यह प्रतीक शब्द की ध्वनियों से असम्बद्ध होता है। यह उस एक शब्द द्वारा अभिव्यक्त विचार का भी प्रतिनिधित्व करता है। चीनी भाषा इसका उदाहरण है। ध्वन्यात्मक प्रतीक में ध्वनियों के क्रम को ज्यों का त्यों उपस्थित किया जाता है।

अर्थ— परिवर्तन के कारण :— शब्द को महान् देव माना गया है। ऋग्वेद के महादेवोमर्त्या 'आविवेश' (ऋग्वेद ४/५८/३) मंत्रांश की व्याख्या करते हुए पतंजलि ने लिखा है— "महान् देव: शब्द:" (महाभाष्य १/१/१/१) अर्थात् शब्द बहुत बड़ा देव है। ब्राह्मणों और उपनिषदों में उसे 'ब्रह्म' और 'प्रजापति' भी कहा गया है। लेकिन शब्द का अर्थ परिवर्तनशील है। अनेक शब्दों के

अर्थ-विस्तार, अर्थ-संकोच और अर्थ की अन्यार्थ में प्रवृत्ति देखी जा सकती है। पतंजलि ने अर्थ को नित्य माना है। और नागेश ने उस नित्य को प्रवाह नित्य कहा है। उसमें प्रवाह के कारण परिवर्तन होने पर भी स्वरूपगत अर्थवत्ता बनी रहा करती है। आधुनिक भाषा-विज्ञान में अर्थ-परिवर्तन के २२ कारण माने गये हैं लेकिन भारतीय वैयाकरणों के अनुसार केवल १२ कारण हैं। इन १२ कारणों में २२ कारणों का अन्तर्भाव हो जाता है। अर्थ-परिवर्तन के १२ कारण हैं— (१) सादृश्य (२) लक्षणा (३) साहचर्य (४) सांस्कृतिक विकास (५) मानव सुलभ स्खलन (६) प्रकरण (७) समास (८) उपसर्ग-संयोग (९) वाच्य (१०) लिङ्ग (११) स्वरभेद (१२) आलंकारिक प्रयोग

सादृश्य को अर्थ-परिवर्तन का हेतु सिद्ध करने के लिये 'पाद' शब्द का उदाहरण दिया जा सकता है। 'पाद' शब्द का अर्थ पैर है। इसी सादृश्य के आधार पर पशु का पैर का चतुर्थांश देखकर उसके लिए पाद शब्द का प्रयोग होने लगा। कालान्तर में चारपाई के पावे और पेड़ की जड़ के क्रमशः चतुष्पादिका एवं पादप के रूप में उसका प्रयोग होने लगा। लक्षणा, के आधार में तत्स्थता, तद्धर्मता, तत्समीपता और तत्साहचर्य के चार तथ्य होते हैं। जैसे 'पर्वत जलता है' में तत्स्थता के कारण पर्वत पर स्थित वृक्षादि जलते हैं अर्थ लक्षित होता है। 'मोहन बैल हैं' में तद्धर्मता के कारण मोहन को मूर्खता के आधार पर बैल कहा गया है। समीपता के कारण 'नदी में घर' कहा जाता हैं। 'भाले चले आ रहे हैं' का साहचर्य से भाले वाले व्यक्तियों का अर्थ प्रकट होता है। साहचर्य के कारण शब्द अपने रूढ़ अर्थ को छोड़कर अन्य अर्थ में प्रयुक्त होता है। ऋग्वेद में सूर्य को उषा के साहचर्य से वत्स-बछड़ा कहा गया है। सांस्कृतिक विकास के कारण भाषा के अंग-उपांगों में अनेक भावों की अभिव्यक्ति के हेतु नये शब्द निर्मित होते हैं। शब्द का मौलिक अर्थ कुछ होता है लेकिन सांस्कृतिक प्रवाह में पड़कर अन्य अर्थ का बोधक हो जाता है। प्रजापति शब्द के अर्थ में जो परिवर्तन आया हैं वह स्पष्ट है। रचयिता, स्रष्टा के स्थान पर 'नीचपुरोहित' अर्थ ध्यान देने योग्य है।

मानव-सुलभ स्खलन के अन्तर्गत अज्ञान, त्रुटियुक्त स्मरण शक्ति अस्पष्ट श्रवण, मिथ्या, ज्ञान आदि को माना गया है। वाक्य तथा प्रकरण के भिन्न होने से शब्द का अर्थ परिवर्तित हो जाता है। जैसे।— उपतिष्ठते क्रियापद का "आदित्यमुपतिष्ठते में" आदित्य की उपासना करता है, 'रथिकानुपतिष्ठते' में

रथिकों का साथ करता है, "गंगायमुनामुपतिष्ठते" में गंगा यमुना से मिलती है, अर्थ हो गया है। समास-विग्रह में पृथक्-पृथक् शब्द सामान्य अर्थ का बोध कराते हैं लेकिन समास हो जाने पर किसी विशेष अर्थ की प्राप्ति होती है। जैसे अप्सुचर=जलजन्तु, गोपुचर=मुर्गी, सरसिज=कमल, वर्षासुज=वीर बहूटी, कर्णजप=चुगलखोर आदि।

उपसर्ग—संयोग हो जाने से शब्द तथा धातुओं में अर्थांतर हो जाता है। जैसे 'हृ' धातु का अर्थ हरण करना है लेकिन उपसर्ग लगाने से प्रहार संहार आहार; विहार बन जाते हैं। वाच्य भेद से भी अर्थ परिवर्तन होता है। जैसे तोलना और तुलजाना का अन्तर स्पष्ट है। "मैं जभी तोलने का करती उपचार स्वयं तुल जाती हूं॥' —कामायनी। वृक्षवाची पुल्लिंग शब्द नपुंसकलिंग होने पर फल का वाचक हो जाता है जैसे— आम्रः वृक्षः = आम्रफलम्। स्वर-भेद से भी अर्थ-परिवर्तन होता है जैसे— मै सुकुमारि! न थ बन जोगू! अलंकार – प्रयोग के द्वारा तो शब्दों के अर्थ में लगातार परिवर्तन होता रहता है जैसे—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों बिध्यो, आगे कौन हवाल॥

इस प्रकार अर्थ— परिवर्तन की अनेक दिशाएँ हैं। कुछ शब्दों के प्राचीन काल में संकुचित अर्थ थे, संस्कृति तथा सभ्यता के विकास के कारण उनमें अर्थ विस्तार हो गया। इसी प्रकार पहले विस्तृत अर्थ था बाद में अर्थ संकोच हो गया।

भाषा-विज्ञान में शब्दों के विकास और उनके इतिहास को जानकर समाज तथा संस्कृति का अच्छा ज्ञान हो जाता है। आचार्य हेमचन्द्र ने देशी 'नाम माला' में संस्कृति-सूचक अनेक शब्दों का संकलन किया है। इन शब्दों के आधार पर तत्कालीन समाज के रहन-सहन और रीति-रिवाजों का ज्ञान आसानी से मिल जाता है।

किसी भाषा का समाजगत अध्ययन 'समाज भाषा-विज्ञान' में किया जाना चाहिए। व्यक्ति जो कुछ सीखता है वह समाज में ही रहते हुए सीखता है। इस दृष्टि से समाज और भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जैसे-जैसे समाज का

विकास होता है वैसे-वैसे भाषा का भी विकास होता जाता है। समाज के विभिन्न वर्गों की भाषा में अनेक स्तर आभासित होते हैं। भाषा का विकास जनसाधारण द्वारा होता है: वे कैसे नये शब्द बनाते हैं, कैसे गढ़ते हैं, बाहर से उधार लेते हैं, पुराने को नया अर्थ देते हैं इत्यादि क्रियाएँ ही समाज-भाषा-विज्ञान को क्षेत्र प्रदान करती हैं। समाज में जो स्वाभाविक अभिव्यक्तियाँ समाज के मन के भावों को प्रकट करती हैं वही समाज भाषा-विज्ञान का आकर्षण है।

शैली-विज्ञान तथा व्यावहारिक भाषा-विज्ञान

कुछ समय से भाषा-विज्ञान की एक नई दिशा प्रस्फुटित हुई है और वह है— शैली-विज्ञान। इसका विकास भारतीय चिंतन अर्थात् भरत से आनन्द-वर्द्धन तक तो दूसरी ओर प्लेटो, देमेत्रियस से रिचर्डस, एपसन, डेवी, याकोब्सन, बाली, टर्नर, आदि से माना जाता है। शैली-वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर इस बात की सम्भावना होती जा रही है कि पाठ सामग्री को केवल अन्य प्रतियों से मिलान करके प्रस्तुत किया जाता है साथ ही उसके भीतर निहित 'पैटर्न' और संघटना को ढूँढने और उसके द्वारा संघटना का निर्माण करने वाले अंगों में विभिन्न स्तरों पर पाये जाने वाले अन्तस्सम्बन्धों का ज्ञान दिलाया जाता है। इस प्रकार का पाठालोचन काव्य-लोचन काव्य-शास्त्र तथा भाषा-विज्ञान के बीच सेतु का काम कर सकता है तथा करने भी लगा है। उदाहरण के लिए 'निराला' के एक गीत की कुछ पंक्तियां लीजिए :—

कहा जो न कहो !
नित्य नूतन, प्राण अपने
गान रच-रच दो।

एक शैली वैज्ञानिक इस प्रकार पाठालोचन करेगा— "भाषा की दृष्टि से अवधी बोली का संस्कार पहली पंक्ति में दिखाई देता है। 'कहा जो न कहो'— 'न' का प्रयोग खड़ी बोली की तरह नकारात्मक नहीं अवधी की तरह अधिक स्वीकारात्मक है। बल देकर कहा जा रहा है कि "जैसा कहा है वैसा कहो"— इस कहने का सम्बन्ध ही 'प्राण द्वारा नित्य नूतन गान' रचने की प्रक्रिया में है। अनुभव विचार बनकर गीत की भाषा में किस प्रकार ढलते हैं। यही यहाँ प्रकट है।"

इसमें सन्देह नहीं कि भाषा-विज्ञान का महत्व आधुनिक युग में बढ़ता जा रहा है। भाषा विज्ञानी की आवश्यकता काव्य-शास्त्र के अध्येताओं को ही नहीं अपितु प्रत्येक साहित्य अध्येता को है। अतः आज भाषा-विज्ञान के दो रूप हो गये हैं— (१) सैद्धान्तिक भाषा-विज्ञान (२) व्यावहारिक भाषा-विज्ञान। शैली-विज्ञान के विकास से व्यावहारिक भाषा-विज्ञान को दिशा मिली है।

मैंने अपनी इस पुस्तिका में व्यावहारिक दिशा को ही प्रधानता दी है। इस दृष्टि से कवियों के काव्य से स्थान-स्थान पर उद्धरण दिये गये है मुझे आशा है कि व्यावहारिक भाषा-विज्ञान के अध्येताओं को यह रचना रुचिकर लगेगी।

—डॉ० मुहम्मद अयूब खाँ
रीडर, हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय

हिन्दी भाषा के शब्दों का भाषा वैज्ञानिक वर्गीकरण

हिन्दी आर्य परिवार की भाषा होते हुए भी अब एक मिश्रित भाषा हो गई है तथा विभिन्न जातियों के सम्पर्क के कारण इसमें अनेक देशी और विदेशी भाषाओं के शब्द ठीक वैसे ही आ मिले हैं जैसे महासागर में अनेक नदियाँ आकर मिल जाती हैं। अतः हिन्दी भाषा में प्रचलित शब्द-रूपों (Etymology) तथा वाक्य-विचारों अर्थात् पद-विज्ञान (Morphology) का यदि वैज्ञानिक दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो यह अत्यन्त रोचक विषय प्रतीत होगा। आवश्यकता है कि प्रत्येक शब्द के उद्गम और व्युत्पत्ति की दिशा में गम्भीरता पूर्वक शोध की साधना की जाय। शब्द-रूपों की खोज में केवल संस्कृत तक ही सीमित न रहकर और मूल रूपों के उत्स का केवल भारोपीय भाषाओं तक ही क्षेत्र न चुनकर संसार की सभी भाषाओं के रूपों को टटोलने का प्रयास करना चाहिए। इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयत्न होना चाहिए।

संसार की अनेक विकासशील भाषाओं की भाँति हिन्दी भाषा के शब्द-समूह में अनेक जीवित तथा मृत भाषाओं के शब्द आ गये हैं। हिन्दी शब्दों की व्युत्पत्ति से सम्बन्धित सामग्री का क्षेत्र बहुत व्यापक है। संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, देशी भाषा अरबी, चीनी, तुर्की, फारसी, पुर्तगाली, पश्तो दक्षिण की द्राविड़ भाषाएँ इत्यादि अनेक स्रोतों से हिन्दी का शब्द-भंडार समृद्ध हुआ है। प्रत्येक शब्द के पीछे एक दीर्घ ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परम्परा अन्तर्निहित है। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में व्युत्पत्तियों के सम्बन्ध में प्रायः विद्वानों ने अपने-अपने व्यक्तिगत अनुमानों का सहारा लिया है। लेकिन प्रामाणिक ग्रन्थों के अनुसंधान के आधार पर ध्वनि-शास्त्र के नियमों के अनुसार शब्दों की व्युत्पत्तियों की पहचान बहुत कम की गई है। हिन्दी-भाषा के निरुक्ति कोश को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

१. भारतीय आर्य-भाषाओं का शब्द समूह
२. भारतीय अनार्य (द्राविड़) भाषाओं के शब्द
३. विदेशी भाषाओं का शब्द समूह

१. भारतीय आर्य भाषाओं का शब्द-समूह :—

हिन्दी में संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश के तद्भव शब्दों की प्रधानता है। बहुत कम तत्सम शब्द हैं। इन भाषाओं के प्रत्ययों का परिवर्तित रूप ही हिन्दी के निरुक्ति कोश को जन्म देता है। अतः हम सब से पहले प्रत्ययों से निर्मित शब्दों को लेंगे।

प्रत्यय द्वारा निर्मित शब्द :– रूप के विचार से हिन्दी के शब्दों को कृत और तद्धित दो प्रकार के प्रत्ययों से निर्मित किया जाता है। क्रिया या 'धातु' के पश्चात् लगने वाले प्रत्यय कृत प्रत्यय कहलाते हैं और उनके योग से बनने वाला शब्द कृदन्त कहलाता है। संज्ञा सर्वनाम और विशेषण आदि प्रातिपदिकों में जोड़ कर कुछ भिन्न अर्थ देने वाले प्रत्यय तद्धित प्रत्यय कहलाते हैं। तद्धित प्रत्यय के योग से बने शब्दों को 'तद्धितांत' कहते हैं।

विकारी कृदन्त के निम्नलिखित रूप प्रचलित हैं :—

२. क्रियार्थक संज्ञा : वर्तमान हिन्दी के धातु के अन्त में 'ना' प्रत्यय जोड़ने से क्रियार्थक संज्ञा बनती है। ब्रजभाषा में 'नो' 'बो' 'बै' और 'न' प्रत्यय लगाया जाता है।

उदाहरणार्थ :—

वर्तमान हिन्दी (खड़ी बोली)— क्रियार्थक संज्ञा केवल पुंल्लिंग और एक-वचन में प्रयुक्त होती है। 'ना' प्रत्यय का रूप देखिए :—

(१) आज भी मनुष्य तलवार के बल पर अपनी मनोभिलाषा पूर्ण करने का प्रयास करता है जिस प्रकार जंगली जानवर अपने नाखून और दाँतों के बल पर अपना मतलब सिद्ध करने का प्रयास करते हैं।

(मानव-धर्म : हजारी प्रसाद द्विवेदी)

(२) है लाभकारक रीति शव के गाड़ने से दाह की।

(भारत भारती - मै॰ श॰ गुप्त)

(३) विरागी जो कहाते हैं उसे घरबार करना क्या ?
हुई जोगिन जो कोई पीकी उसे संसार करना क्या ?
(वली (१६६८-१७७४)

पूर्वी ब्रज :— क्रियार्थक संज्ञा वनाने के लिए पूर्वी ब्रज, पश्चिमी और दक्षिणी ब्रज में 'नो' लगाया जाता है

(१) फिर बूझति हैं चलनो अब केतिक
पर्नकुटी करि हौ कित ह्वै
(तुलसी कवितावली)

(२) वाकूँ जि काम करनो है।

पश्चिमी ब्रज में तथा पूर्वी ब्रज में 'बो' का प्रयोग होता है—

(१) मन की अटक जहाँ रूप को विचार कहाँ
रीझिबो को पैंडो तहाँ बूझ कछू न्यारी है
—आलम

(२) कियो न कछू करिवो न कछू
कहिवो न कछू मरिबोई रह्यो है।
(तुलसी– कवितावली)

(३) तुमसों प्रेम कथा को कहिबो
मनुहु काटिवो घास
(सूर भ्रमर-गीत)

अधिकतर क्रियार्थक संज्ञा के मूलरूप के पूर्वकालिक कृदन्त में 'बे' या 'बै' लगा दिया जाता है :—

(१) लंक लीलिवे को
काल-रसना पसारी हैं।
(तुलसी – कवितावली)

(२) कहिबै जीव न कछु संक राखो
(सूर – भ्रमरगीत)

(३) राम कृपालै पालिए दीन पालबे जोग
(तुलसी – कवितावली)

ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं में व्यंजनांत अथवा अकारान्त धातुओं में 'अन' या 'न' लगाकर क्रियार्थक संज्ञा बनाई जाती है :—

(१) देखन बाग कुंवर दोउ आये
(तुलसी - मानस)

(२) राम नाम बोहित भवसागर
चाहै तरन तरोगों।
(तुलसी विनय-पत्रिका)

(३) आए जोग सिखावन पांडे।
(सूर भ्रमर-गीत)

२. वर्तमान कालिक कृदन्त :—

धातु के अन्त में 'कु' जोड़ने से क्रिया - द्योतक कृदन्तीय विशेषण बनता है। यह वाक्य में विशेषण के समान ही प्रयुक्त होता है लेकिन आजकल हिन्दी में इसका प्रयोग कालरचना में भी होता है। जैसे बहने से बहता, मरना से मरता, गाना से गाता।

जैसे—

(१) मैं मन में कुढ़ता हुआ कुछ देर के लिए घर से चला जाता।
(मोहन राकेश (न आनेवालाकल पृष्ठ १३)

(२) क्रोध से तिलमिलाता हुआ अत्याचारी
(आचार्यशुक्ल (चिंतामणि भा० १)

(३) जीवन क्या है ? सागर के सीने पर
तिरती हिम - नंया
(अयूब प्रेमी, दर्पण बन गया इतिहास)

यही 'ता' प्रत्यय ब्रजभाषा में 'त' के रूप में था। अवधी और ब्रज में व्यंजनांत धातुओं में 'त' और लगाकर वर्तमान कालिक कृदन्त के रूप बनाये जाते हैं। जैसे—

(१) यहाँ तो विसम ज्वर वियोग की चढ़ाई
पाती कौन रोग की पठावंत दवाई हैं।

(२) देखत जगत चला सब जाई
(शेख उस्मान चित्रावली)

(३) इत चितवत उतधार चलावत
इहि सिखयो है मैंया।
(सूरदास)

ब्रजभाषा के समान ही अवधी तथा भोजपुरी में भी गुण वाचक विशेषण बनाये जाते हैं। 'अत' प्रत्यय ही प्रधान होता है। जैसे –

(१) जेउ कहावत हितू हमारे (मानस, अवधी।

(२) उड़त चिरई (भोजपुरी)

(३) गावत आदमी („)

कहीं कहीं वर्तमान कालिक कृदन्त बनाने के लिए 'ना' के स्थान पर 'हुआ' भी आजाता है। जैसे 'जाना' से 'जाता हुआ' 'गाना' से 'गाता हुआ'

३. भूतकालिक कृदन्त :—

भूतकालिक कृदन्त बनाने के लिए धातु से 'ना' का लोप करके उसके स्थान पर 'आ' प्रत्यय जोड़ा जाता है जैसे 'पढ़ना' से 'पढ़ा', 'धोना' से 'धोया' इत्यादि।

(क) व्यंजनान्त धातुओं में 'आ' जोड़ा जाता है—

चल	—	चला
कह	—	कहा
सह	—	सहा
जोड़	—	जोड़ा

(ख) धातु के अन्त में आ, ए, वा, ओ हो तो धातु के अन्त में य कर दिया जाता है—

पा	से	पाया जाता है—
खा	,,	खाया
रो	,,	रोया
समझा	से	समझाया
कटवा	से	कटवाया
पिटवा	से	पिटवाया

(ग) धातु के अन्त में 'ई' होने पर ह्रस्व कर दिया जाता है -

सी से सिया
पी से पिया
जी से जिया

(घ) ऊकारान्त धातुओं में 'ऊ' को ह्रस्व कर आ लगा देते हैं—

चु से चुआ
हु से हुआ
छू से छुआ

(ङ) कुछ अपवाद भी हैं जैसे

कर से किया
दे से दिया
ले से लिया
जा से गया

ब्रजभाषा में यो या ओ जोड़ कर कृदन्त बनाने का नियम है :—

(१) अब हौं नाचयो बहुत गोपाल। (सूरदास)

(२) मैया मैं नाहिं माखन खायो। (सूरदास)

(३) राजेहु काज अकाज न जान्यो। (कवितावली तुलसी)

अवधी में धातु के अन्त में पुंलिंग में एकवचन के लिए 'आ' का प्रयोग और बहुवचन के लिए 'ए' का प्रयोग होता है। स्त्रीलिंग एकवचन के लिए 'ई' का प्रयोग होता है तथा बहुवचन के लिए 'ईं' का प्रयोग होता है —

(१) रघुपति पद सरोज चितु राचा। (मानस तुलसी)

(२) देखन बाग कुंवर दोउ आये। (मानस, तुलसी)

(३) धरि धीरज प्रतीति उर आनी। (मानस, तुलसी)

(४) संग लाइ करिनी करि लेहीं।
मानहु मोहि सिखावन देहीं। (मानस, तुलसी)

भोजपुरी में इल प्रत्यय लगाने से कर्मवाच्य की उत्पत्ति होती है—

(१) उ मरा गाइल – वह मारा गया।

(२) उ पिटा गइल — वह पीटा गया।

४. कर्तृवाचक संज्ञा :— कर्तृवाचक कृदन्तीय विशेषण बनाने के लिए क्रिया के 'ना' के स्थान पर 'वाला', हारा, ऐया, वैया, आऊ, आक, आका, आड़ी, आलू, क्कड़, इया, इत्यादि प्रत्यय लगाये जाते हैं—

वाला का प्रयोग —	पढ़ना से पढ़ने वाला		
	लिखना से लिखने वाला		
	दौड़ना से दौड़ने वाला		
हारा का प्रयोग —	रोना	से	रोवनहारा
—	छेदना	से	छेदनहारा
—	तोड़ना	से	तोड़नहारा
ऐया का प्रयोग —	लुटना	से	लुटैया
	खेलना	से	खिलैया
	रचना	से	रचैया
वैया ,,	खेना	से	खिवैया
	लिखना	से	लिखवैया
	गाना	से	गवैया
आऊ ,,	टिकना	से	टिकाऊ
	बिकना	से	बिकाऊ
	चलना	से	चलाऊ
आक ,,	तैरना	से	तैराक
	पैरना	से	पैराक
	चलना	से	चालाक
आका का प्रयोग—	लड़ना	से	लड़ाका
	पटकना	से	पटाका
	खड़कना	से	खड़ाका
आड़ी का प्रयोग—	खेलना	से	खिलाड़ी
आलू का प्रयोग—	झगड़ना	से	झगड़ालू
	भिड़ना	से	भिड़ालू
क्कड़ का प्रयोग—	पीना	से	पियक्कड़

खेलना से खिलक्कड़
चलना से चलक्कड़

इया का प्रयोग— बढ़ना से बढ़िया
घटना से घटिया
लोटना से लुटिया

इयल का प्रयोग— अड़ना से अड़ियल
मरना से मरियल
सड़ना से सड़ियल

कर्तृवाचक का प्रयोग संज्ञा या विशेषण के समान होता है जैसे :—

(१) न आने वाला कल (उप० मोहन राकेश)

(२) होरी ने आने वाली गाय के पुट्ठे पर हाथ रखकर कहा।
(गोदान —प्रेमचन्द)

(३) जय बोलो कृष्ण कन्हैया की
वृन्दावन रास रचैया की
(नजीर अकबराबादी)

४) नाथ संभुधनु भंजनिहारा
होइ है कोउ एक दास तुम्हारा (मानस, तुलसी)

अविकारी कृदन्तों के निम्नलिखित रूप प्रचलित हैं—

१. पूर्वकालिक कृदन्तः— हिन्दी में धातु के अन्त में के, करके जोडने से पूर्वकालिक कृदन्त बनते हैं। जैसे

(१) ...पानी की ज्येष्ठता और श्रेष्ठता का विचार करके लोग पुरुषों को भी उसी के नाम से आप पुकारने लगे होंगे।
— (आप - प्रतापनारायण मिश्र)

(२) आओ विचारें बैठकर ये समस्याएँ सभी।
(भारत-भारती-मै० श० गुप्त)

(३) प्रीति करि काहू सुख न लह्यौ। (सूरदास)

अवधी और ब्रजभाषा में के या कै जोड़कर भी पूर्वकालिक कृदन्त बनाया जाता है—

(१) तुलसी रघुवीर प्रियाश्रम जानिकै (कवितावली-तुलसी)

(२) सुनिकै उतर आसु पुनि पोंछे (जायसी)

(३) मात-पिता को हेतु जानिकै। (सूरदास-भ्रमरगीत)

भोज पुरी में धातु के अन्त में इ प्रत्यय लगाकर उसके बाद 'के' या कै परसर्ग लगाकर पूर्वकालिक कृदन्त बनाया जाता है—

(१) उ देखि के जात बाय (वह देखकर जाता है)

(२) उ सुनि के कहत बाय (वह सुनकर कहता है)

२. तात्कालिक कृदन्त :— वर्तमान हिन्दी में तात्कालिक कृदन्त बनाने के लिये वर्तमानकालिक कृदन्त के 'ता' को 'ते, करके उसके आगे 'ही' का प्रयोग होता है :—

(१) चुभते ही तेरा अरुण बाण। (महादेवी वर्मा)

(२) भोला की संकट-कथा सुनते ही उसकी मनोवृत्ति बदल गई। (गोदान-प्रेमचन्द)

ब्रजभाषा और अवधी में 'त' के द्वारा ही तात्कालिक कृदन्त बन जाते हैं। ते के आदेश की आवश्यकता नहीं होती। जैसे—

(न) तातो जल देखत ही भाजे जाते (सूरदास)

(२) छुअत सिला भई नारि सुहाई (मानस, तुलसी)

भोजपुरी में तात्कालिक कृदन्त बनाते समय 'त' को 'तै' आदेश किया जाता है और फिर 'ही' नहीं जोड़ा जाता। जैसे—

उ जातै मारि लिहल (उसने जाते ही मारा)

३. अपूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त :— आधुनिक हिन्दी में 'ता' का 'ते' आदेश कर देने से यह कृदन्त बनता है। इसमें 'ही' का प्रयोग नहीं होता। जैसे—

(१) मेरे रहते कौन तुम्हें देखेगा टेढ़ी नज़रों से?

(२) जो था महाभारत-समर में नष्ट होते बच रहा (भारत-भारती-गुप्त जी)

(३) नेहिन के मन भावते, विरह आँच सो ताइ।
कुंदन सों कर लेत हैं, रूप कसौटी लाइ॥
(—रसनिधि)

अधिकतर ब्रज भाषा, अवधी तथा भोजपुरी में 'ते' के स्थान पर 'त' का ही प्रयोग होता है :—

(१) वर्षा काल मेघ नभ छाये। गरजत लागत परम सुहाये ॥
(मानस - तुलसी)

(२) बढ़त-बढ़त संपति सलिल, मन सरोज बढ जाय ।
घटत-घटत पुनि ना घटे, बरु समूल कुम्हिलाय ॥
(विहारी)

(३) आवत जावत लाज लगत है। (भोजपुरी)

४. पूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त :— भूतकालिक कृदन्त विशेषण के अन्त्य 'आ' को 'ए' करने से यह रूप बनता है :—

(१) हे लाज मरे सौन्दर्य बता दो, मौन बने रहते हो क्यों ?
मधु सरिता सी यह हंसी, तरल अपनी पीते रहते हो क्यों ?
(जय शंकरर प्रसाद)

(२) भूरे जलदों से धूमिल नभ
विहग छदों से बिखरे,
धेनु-त्वचा से सिहर रहे
जल में रोओं से छितरे ।
गंगा की सांझसुमित्रानन्दन पंत)

(३) आज अपनी वेदना के
जबकि मैंने गीत गाए ।
मन - विपंची ने तुम्हारे
तार भी तब झनझनाए।
(बच्चन)

(४) रहे समीप बड़ेन के, होत बड़ो हित मेल।
(वृन्द)

(५) तुमही कहत हम पढ़े एक साथ हैं।
(सुदामा-चरित नरोत्तम दास)

(६) अमिय हलाहल मदभरे
(रसलीन)

तद्धित प्रत्यय से बने शब्द

जिन प्रत्ययों का भिन्न-भिन्न प्रयोग हो सके उन्हें तद्धित प्रत्यय कहते हैं :— तेभ्यः प्रयोगेभ्यः हिताः इति तद्धिताः। कुछ ऐसे प्रातिपदिक या शब्दांश जो संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण अथवा क्रिया (धातु) के साथ जोड़ दिये जाने से अर्थ में अन्तर करने वाले रूप तद्धिति प्रत्यय कहलाते हैं। अतः संज्ञा, सर्वनाम विशेषण के अन्त में जो प्रत्यय लगाये जाते हैं उन्हें तद्धित और उनके लगाने से जो शब्द बनते हैं उन्हें तद्धितांत कहते हैं। ये पाँच प्रकार के हैं :—

१. अपत्य वाचक :
२. कर्तृ वाचक
३. गुण वाचक
४. भाव वाचक
५. लघु वाचक या ऊनवाचक

१. अपत्यवाचक :— व्यक्तिवाचक संज्ञाओं से अ, य, आयन, इ, ऐय, इक प्रत्यय लगाने से सन्तान या, अनुयायी होने का बोध होता है। जैसे :—

अ अप्रत्यय	—	वसुदेव	से	वासुदेव
		सुमित्र	,,	सौमित्र
		मनु	,,	मानव
य	—	दिति	से	दैत्य
		अदिति	,,	आदित्य
		सहित	,,	साहित्य
आयन	—	नर	से	नारायण
		वदर	,,	बादरायण
		राम	,,	रामायण
ऐय	—	राधा	से	राधेय
		सीता	,,	सीतेय
		कुन्ती	,,	कुन्तेय

इन शब्दों के अतिरिक्त कुछ शब्दों में पहले वर्ण को दीर्घ या आदेश कर देने से भी प्रत्यय लगाये जाते हैं। इस प्रकार के बने हुए शब्द हैं :—

दशरथ	से	दाशरथि
पाण्डु	,,	पाण्डव

कुरु	,,	कौरव
बुद्ध	,,	बौद्ध
जिन्	,,	जैन
ईसा	,,	ईसाई
विष्णु	,,	वैष्णव
शिव	,,	शैव
शक्ति	,,	शाक्त

२. कर्तृवाचक :— जिन शब्दों से कार्य या व्यवसाय करने वाले का बोध होता है। कर्तृवाचक तद्धितीय शब्द बनाने के लिए संज्ञा के पश्चात् आर, इया, ई, उआ, रा, वन, वाल, वाला इत्यादि प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है :

आर	—	सोना	से	सुनार	(सोनार)
		लोहा	,,	लुहार	(लोहार)
इया	—	आढ़त	से	आढ़तिया	
		तेल	,,	तेलिया	
		रोकड़	,,	रोकड़िया	
ई	--	ताम्बूल	से	तम्बोली	
		तेल	,,	तेली	
		योग	,,	योगी	
		रोग	,,	रोगी	
		भोग	,,	भोगी	
		त्याग	,,	त्यागी	
		वैराग	,,	बैरागी	
रा	—	सांप	से	संपेरा	
		लूट	,,	लुटेरा	
		अन्धा	,,	अँधेरा	
वाल	—	कोतवाली	,,	कोतवाल	
हारा	—	सुख	,,	सुखिहारा	
		चूड़ी	,,	चुड़िहारा	
		लकड़ी	,,	लकड़हारा	
वान	—	रथ	से	रथवान	

		गाड़ी	,,	गाड़ीवान
		विद्या	,,	विद्वान
दार	—	थाना	,,	थानेदार
		ताल्लुक	,,	ताल्लुकेदार
		ज़मीन	,,	ज़मींदार

३. गुणवाचक:— जिन शब्दों से किसी वस्तु का गुण प्रकट होता है उनको विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया जाता हैं। येगुणवाचक विशेषण य, इक, मती, वती, वी, मय, इत, ल, इल, र, ईई, इन, निष्ठ जैसे, तद्धित प्रत्ययों के लगाने से बनते हैं :—

य प्रत्यय :—		अन्त	से	अन्त्य
		तालु	,,	तालव्य
		प्राक्	,,	प्राच्य
		ग्राम	,,	ग्राम्य
		दीन	,,	दैन्य
इक		नाव	से	नाविक
		नगर	,,	नागरिक
		समर	,,	सामरिक
		भूति	,,	भौतिक
		लोक	,,	लौकिक
		देव	,,	दैविक
		इइिहास	,,	ऐतिहासिक
		न्याय	से	नैयायिक
		मुख	,,	मौखिक
		पुराण	,,	पौराणिक
		दिन	,,	दैनिक
		देह	,,	दैहिक
		संसार	,,	सांसारिक
		अर्थ	,,	आर्थिक
		अणु	,,	आणविक
मती	—	बुद्धि	से	बुद्धिमती

		श्री	,,	श्रीमती
		मधु	,,	मधुमती
वती	—	तेज	,,	तेजवती
		सत्य	,,	सत्यवती
वी	—	मेधा	से	मेधावी
		तेजस्	,,	तेजस्वी
		तपस्	,,	तपस्वी
		मनस्	,,	मनस्वी
मय	—	ज्ञान	से	ज्ञानमय
		मधु	,,	मधुमय
		रूप	,,	रूपमय
		आनन्द	,,	आनन्दमय
इत	—	दुखी	,,	दुखित
		तृषा	से	तृषित
		ताप	,,	तापित
		शाप	,,	शापित
		क्षुधा	,,	क्षुधित
		इच्छा	,,	इच्छित
		परीक्षा	,,	परीक्षित
		आनन्द	,,	आनन्दित
ल		पंक	से	पंकिल
		मांस	,,	मांसल
		जटा	,,	जटिल
		कूट	,,	कुटिल
इल	—	तन्द्रा	,,	तन्द्रिल
		स्वप्न	,,	स्वप्निल
र	—	मुख	,,	मुखर
		मधु	,,	मधुर
ईन	—	कुल	से	कुलीन
		ग्राम	,,	ग्रामीण
इय	—	देश	से	देशीय

		भारत	,,	भारतीय
		राष्ट्र	,,	राष्ट्रीय
		जाति	,,	जातीय
इन	—	काठ	,,	कठिन
		मल	,,	मलिन
निष्ट	—	विचार	से	विचारनिष्ट
		समावेश	,,	समाविष्ट
		कर्म	,,	कर्मनिष्ट

इन गुणवाचक प्रत्ययों के अतिरिक्त आधुनिक हिन्दी में आ, आई, ई वी, एरा, ऐया' ऐत, ऐल, ओं, ठा, ना, ला, ईली वाला, वाँ, सा, वान, हरा, और हला प्रत्यय प्रचलित है :—

आ प्रत्यय	—	भूख	से	भूखा
		प्यास	,,	प्यासा
		डर	,,	डरा
		ठंड	,,	ठंडा
आई	—	पंडित	से	पंडिताई
		विदा	,,	बिदाई
ई	—	देहात	से	देहाती
		शहर	,,	शहरी
		पहाड़	,,	पहाड़ी
		बनारस	,,	बनारसी
वी	—	लखनऊ	,,	लखनवी
		देहली	,,	देहलवी
ऊ	—	पेट	,,	पेटू
		खाना	,,	खाऊ
		बाज़ार	,,	बाज़ारू
एरा	—	चचा	से	चचेरा
		मामा	,,	ममेरा
ऐया	—	घर	,,	घरैया
ऐत	—	लाठी	,,	लठैत
		गुण	,,	गुणैत

ऐल	—	सड़ाँध	से	सड़ैल
		हँसी	,,	हँसैल
		गुस्सा	,,	गुसैल
ओं	—	तीस	से	तीसों
		पचास	,,	पचासों
ठा	—	छः	से	छठा
ना	—	आप	से	अपना
ला	—	पहल	से	पहला
वाला	—	मिठाई	से	मिठाई वाला
		बनारस	,,	बनारस वाला
		ठेला	,,	ठेलेवाला
वाँ		पाँच	,,	पाँचवाँ
		बीस	,,	बीसवाँ
सा		उपवास	से	उपवासा
		उदास	,,	उदासा
		प्यास	,,	प्यासा
ईली	—	शर्म	से	शर्मीली
		लाज	,,	लजीली
हरा	—	एक	से	एकहरा
		दो	,,	दुहरा
		चार	,,	चोहरा
		सोना	,,	सुनहरा
हला	—	रूप	,,	रूपहला

४. भाववाचक :— भाववाचक तद्धितीय संज्ञाएँ बनाने के लिए संज्ञाओं अथवा विशेषणों के अन्त में आई, पा, पन, वट, हट, त, स, नी, इत्यादि को लगाया जाता है जैसे :—

आई	—	भला	से	भलाई
		रंग	,,	रंगाई

		लाल	,,	ललाई
पा	—	मोटा	से	मुटापा
		बूढ़ा	,,	बुढ़ापा
		राँड	,,	रँडापा
पन	—	लड़का	,,	लड़कपन
		नीच	,,	नीचपन
		ऊँच	,,	ऊँचपन
वट	—	बुनाई	,,	बुनावट
		लेख	,,	लिखावट
		कढ़ाई	,,	कढ़ावट
		बनाई	,,	बनावट
हट	—	चिकना	,,	चिकनाहट
		कड़वा	,,	कड़वाहट
त	—	रंग	से	रंगत
		संग	,,	संगत
		पंक्ति	,,	पंगत
स	—	मीठा	से	मिठास
		हविस	,,	हवास
		खटाई	,,	खटास
नी	—	काम	से	कामिनी
		मामा	,,	मामिनी
		चाँद	,,	चाँदनी
		राग	,,	रागिनी
ई	—	जवान	से	जवानी
		रवाँ	,,	रवानी
		भला	,,	भलाई
ता	—	मित्र	से	मित्रता
		शत्रु	,,	शत्रुता
		सज्जन	,,	सज्जनता

५. लघुवाचक (ऊनवाचक) जिन तद्धित शब्दों से छोटाई, लघुता या कमी का बोध हो। ऊन वाचक तद्धितीय शब्द आ, वा, ई, की, टा, डी, या, री प्रत्ययों के योग से बनते हैं :—

आ	—	पिल्ला	से	पिलुआ
		लल्ला	,,	ललुआ
वा	—	बछड़ा	से	बछवा
		बेटा	,,	बिटवा
		बच्चा	,,	बचवा
ई	—	कटोरा	,,	कटोरी
		कोठरा	,,	कोठरी
		रस्सा	,,	रस्सी
		प्याला	,,	प्याली
		थाल	,,	थाली
की	—	मट	,,	मटकी
		ढोल	से	ढोलकी
		बेटी	,,	बिटकी
टा	—	रूँग	से	रोंगटा
		नाक	,,	नकटा
ड़ी	—	टुकड़ा	,,	टुकड़ी
या	—	पट्ठा	से	पठिया
		बच्चा	,,	बचिया
		बच्छ	,,	बछिया
		लोटा	,,	लुटिया
		डिब्बा	,,	डिबिया
		खाट	,,	खटिया
		फोड़ा	,,	फोड़िया
री	—	पत्थर	,,	पथरी
		खप्पर	,,	खपरी
		छप्पर	,,	छपरी

उपसर्गों से बने शब्द :— शब्दांशों का प्रयोग स्वतंत्र रूप से नहीं होता क्योंकि जब वे अकेले होते हैं तो उनका सार्थक रूप नहीं होता उनको सार्थक बनाने के लिए पहले या बाद में कुछ शब्द मिलाये जाते हैं। जो शब्दांश शब्दों के आदि में लगाये जाते हैं, उन्हें उपसर्ग (Prefix) कहते हैं और जो बाद में लगाये जाते हैं उन्हें प्रत्यय (Suffixes या Affixes) कहते हैं। हिन्दी में निम्नलिखित उपसर्ग प्रयुक्त होते हैं —

(१) अ उपसर्ग— नहीं के अर्थ में प्रयुक्त होता है जैसे—अभाव, अधर्म, अनीति, अज्ञान आदि

(२) अधि— समीपता, प्रधानता और ऊँचाई के अर्थ में प्रचलित है जैसे— अधिष्ठाता, अध्यक्ष, अधिपति, अधिकार आदि

(३) अति—अधिक, उस पार और ऊपर का अर्थ द्योतित करता है। जैसे अतिशय, अतिरिक्त, अत्यन्त, अत्याचार, अत्युक्ति, अतिव्याप्ति इत्यादि।

(४) अध—आधा के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे—अधखिला, अधमरा, अधपका, अधकच्चा इत्यादि।

(५) अनु क्रम-सूचक, समानता-सूचक और पश्चात् के अर्थ में प्रयुक्त होता है :— अनुकरण, अनुशासन, अनरूप, अनुसार, अनुक्रमण, अनुगमन, अनुग्रह, अनुसंधान, अनुमान, अनुताप, अनुज, अनुचर, अनुगामी, इत्यादि।

(६) अप— लघुता, हीनता, विरुद्धता, अभाव के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे अपवाद, अपकर्ष, अपव्यय, अपकार, अपहरण, अपशब्द, अपकीर्ति, अपयश, अपमान, आदि।

(७) अभि— ओर, समीप, अधिक, पूर्ण, इच्छा का द्योतक है। जैसे— अभिमत, अभिलाषा, अभ्यास, अभिमुख, अभ्युदय, अभिसार, अभिप्राय, अभिनव, अभिमान।

(८) अव— हीनता, अनादर, पतन के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे— अवगत, अवगाह, अवलोकन, अवनत, अवस्था, अवसान, अवज्ञा, अवरोहण, अवमान आदि।

(९) आ—सीमा, ओर, समेत, अभी, विपरीत का द्योतक है। जैसे— आगमन,

आकाश, आदान, आचरण, आरक्त, आरम्भ, आरक्त, आजान, आकर्षक, आजीवन, आजन्म आरोहण, आबालवृद्ध, आक्रमण आदि ।

(१०) उत-उद— ऊपर तथा उच्चता का द्योतक है। जैसे— उत्तम, उत्पत्ति, उत्पन्न, उत्कंठा, उद्देश्य, उद्गम, उत्थान, उद्भव, उत्साह, उद्गार, आदि।

(११) उप— लघुता, समीपता, सादृश्य, और सहायक का द्योतक है। जैसे उपनाम, उपनेत्र, उपवेद, उपासना, उपकार, उपकूल, उपन्यास, उपवन, उपस्थिति, उपदेश, उपभेद, उपसमापति आदि ।

(१२) दुर-दुस— दुष्टता, हीनता, कठिनता, का द्योतक है। जैसे—दुष्टता, दुःसह, दुर्बुद्धि, दुष्प्राप्य, दुर्गम, दुष्कर्म, दुर्जन, दुर्बल, दुर्दशा, दुर्लभ, दुर्दिन, दुर्गुण, दुराचार आदि ।

(१३) नि— नीचे, भीतर, बाहर के अर्थ को द्योतित करता है जैसे— निदान, निकृष्ट, निबन्ध, निपात, निरोध, निगोड़ा, निरूपण, निदर्शन, निम्न, निवास, निमग्न, निडर, निवारण, नियुक्त आदि ।

(१४) निर—निश— रहित, निषेध का द्योतक है। जैसे—निरोग, निर्वास, निर्लेप, निर्मम, निर्भय, निर्दोष, निराकरण, निर्जीव, निर्मल, निराकरण आदि ।

(१५) परा— अनादर, नाश, विपरीत के अर्थ में प्रयुक्त होता है जैसे—परास्त, पराक्रम, परामर्श, पराजय, पराभव, परावर्तन आदि ।

(१६) परि—त्याग और अतिशय के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे—परित्याग, परिजन, परिच्छेद, परिपूर्ण, परिक्रमा, परिधि, पर्याप्ति, परिभ्रमण, परिवर्तन, परिणाम आदि।

(१७) प्र—यश, उत्पति, गति, उत्कर्ष, अतिशय, व्यवहार के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे—प्रताप, प्रलय, प्रस्थान, प्रबल, प्रमाण, प्रयोग, प्रसन्न, प्रकाश, प्रसार आदि ।

(१८) प्रति— बराबरी, विरोध, परिवर्तन, प्रत्येक को द्योतित करता है। जैसे— प्रतिनिधि, प्रतिदान, प्रत्युपकार, प्रतिकूल, प्रतिकार, प्रतिवादी, प्रत्येक, प्रतिध्वनि प्रत्यक्ष आदि ।

(१९) वि—भिन्नता, हीनता, विशेषता, असमानता के अर्थ में जैसे—विमुख, विकार, विभाग, वियोग, विधवा, विराम, विस्मरण, विज्ञान, विदेश आदि।

(२०) समः—संयोग और पूर्णता के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे— संसर्ग, संकल्प, सम्मुख, संस्कृत, संयोग, संग्रह, संग्राम, संन्यास, संहार आदि।

(२१) ना— बिना के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यह उर्दू का उपसर्ग है जो हिन्दी में प्रयुक्त हो रहा है। जैसे—नादान, नाउम्मेद, नापसन्द, नालायक नासमझ, नामाकूल आदि।

(२२) सु— अच्छा, सहज और सुन्दर के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे—सुकृत, स्वागत, स्वार्थ, सुकर्म, सुगमता, सुवास, सुयश आदि।

(२३) अन—अभाव, निषेध के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यह संस्कृत उपसर्ग का ही तद्भव रूप है। जैसे—अनमोल, अनमेल, अनबन, अनजान, अनमना, अनहोनी, अनदेखा, अनगाया, अनपढ़ अनहित आदि।

(२४) सह—साथ के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे—सहकारी, सहज, सहचर, सहानुभूति आदि।

(२५) अध— आधे के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे—अधपका, अधरवाया, अधमरा, अधकचरा, अदपई, अधसेरा आदि।

(२६) औ— हीनता और निषेध का द्योतक है। जैसे— औघट, औगुन, औसर, आदि।

(२७) बिन— निषेध के अर्थ में आता है। जैसे—बिनब्याह, बिनदेखा, बिनचाखा, बिनखाया आदि।

(२८) भर— भाव या पूर्णतिका द्योतक है। जैसे—भरमार, भरपूर, भरसक, भरपेट, आदि।

(२९) स -सहित के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे सजग, सकाम, सहित, सरस, सज्ञान आदि।

(३०) कम— यह उर्दू का उपसर्ग है जिसे हिन्दी में बहुत अधिक प्रयुक्त किया जाता है। हीन और थोड़े के अर्थ में इसका प्रयोग होता है।

जैसे—क़मज़ोर, कम्बख़्त, कमख्याल, कमसिन, कमहिम्मत आदि।

(३१) खुश— ख़ुशी के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे—ख़ुशबू, ख़ुशदिल, ख़ुश ख़बरी, ख़ुशहाल आदि।

(३२) ग़ैर—निषेध के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे—ग़ैरहाज़िर, ग़ैरक़ानूनी, ग़ैरमुमकिन आदि।

(३३) बद—बुरे के अर्थ में यह उर्दू उपसर्ग प्रयोग में आता हैं। जैसे—बदबू, बदनाम, बदमाश, बदक़िस्मत, बदहज़मी आदि।

(३४) सर—मुख्य के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे—सरताज, सरदार, सरकार सरपंच, सरहद आदि।

(३५) हम—साथ के अर्थ में प्रयुक्त होता है जैसे—हमदर्दी, हमदम, हमराह आदि।

(३६) हर—प्रत्येक के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे—हरदिन, हर रोज़, हरसाल, हरएक, हरबार, हरकाम आदि।

इन शब्द-रूपों के अतिरिक्त समास द्वारा भी शब्द बनाये जाते हैं। पुनरुक्ति तथा संधियों के द्वारा हज़ारों शब्द बन जाते हैं।

प्राकृत-भाषा का शब्द-भंडार— यह शब्द-समूह तत्सम, तद्भव और देश्य शब्दों से युक्त है। तत्सम वे शब्द हैं जिन की ध्वनियाँ संस्कृत के समान होती हैं जिन में किसी प्रकार का भी विकार नहीं होता। जैसे नीर, कंठ, ताल, तीर आदि। जिन शब्दों को संस्कृत ध्वनियों में वर्णलोप, वर्णागम, वर्णविकार अथवा वर्ण-परिवर्तन द्वारा बनाया जाय वे तद्भव कहलाते हैं। जैसे :—

अग्र > अग्ग, धर्म > धम्म, गज > गय. अपराध >, अवराह, ध्यान > झाण, पश्चात् > पच्छा, अक्षर > अच्छर, कार्य > कारज आदि।

जिन प्राकृत शब्दों की व्युत्पत्ति-प्रकृति-प्रत्यय विधान संभव न हो और जिनका अर्थ रूढ़ि पर आधारित हो उन शब्दों को देशज या देशी कहते हैं। जैसे—

अगय = दैत्य, इराव = हाथी, बोन्दि = शरीर इत्यादि।

देशी शब्द :— विद्वान अधिकतर हिन्दी शब्दों की व्योत्पत्तियाँ संस्कृत

शब्दावली से सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं लेकिन यथार्थ में इस प्रकार के अनेक सैंकड़ों शब्द हैं जिनका संस्कृत के शब्दों से कोई सम्बन्ध नहीं है। आचार्य हेमचन्द्र के देशी नाममाला प्राकृत कोश में ऐसे अनेक शब्द हैं।

निम्नलिखित तालिका में ऐसे हीदेशी शब्द हैं जिनसे हिन्दी के ठेठ शब्दों की व्युत्पत्ति सिद्ध की जा सकती है—

(१) अंगालिअं > इक्षुखण्डम् (सं॰) पशुओं के चारे वाला पत्रों से युक्त ईख का टुकड़ा। भोजपुरी, ब्रजभाषा और अवधी में अंगोला शब्द प्रचलित है।

(२) अम्मा > मा हिन्दी की प्रत्येक बोली में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

(३) उक्खली > ओखली (उर्दू) > ओखरी (अवधी) > ओखली (ब्रजभाषा) > ऊखली (भोजपुरी)

(४) चुल्लीइ > चूल्हा (उर्दू, भोजपुरी, राजस्थानी, ब्रजभाषा तथा अवधी) ब्रजभाषा के कुछ क्षेत्रों में चूल्हो भी बोला जाता है।

(५) उत्थला > उथल (हिन्दी की सभी बोलियों में मिलता है)।

(६) उसीरं > विसतन्तुः (संस्कृत) > उशीर (अवधी, ब्रजभाषा तथा भोजपुरी)

(७) उड़िदो > माषधान्यम् (संस्कृत) > उड़द (ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली) > उरिद (भोजपुरी)।

(८) उव्वेत्तालं > उत्तालं (संस्कृत) > उत्ताल हिन्दी की सभी बोलियों में]

(९) उव्वाओ > ऊबना (ब्रज, खड़ी बोली तथा भोजपुरी)

(१०) उत्थल्ल पत्थल्ला > उथल पुथल (ब्रज, खड़ी बोली)

(११) ओज्झरी (अन्त्रावरणम) > ओझड़ी (ब्रजभाषा में) > ओझरी (खड़ी बोली) > ओझर (भोजपुरी)

(१२) ओड्ढणं (उत्तरीयं) > ओढ़नी (खड़ी बोली, उर्दू ब्रजभाषा तथा अवधी)

(१३) कट्टारी > कटारी (हिन्दी की सभी बोलियों में) वैसे संस्कृत शब्द कर्तरी से संबन्ध बिठाया जा सकता है)

(१४) कन्दो (मूलशाकम्) > कन्द (हिन्दी की सभी बोलियों में)

(१५) काहारो (जलादिवाहीकर्मकार) > कहार (हिन्दी) की सभी बोलियों में)

(१६) कुकुसो (धान्यादि तुषः) > कुकुस (ब्रजभाषा में) > कूकस (पश्चिम ब्रजभाषा) > कन ककस (अवधी)

(१७) कुक्खी (कुक्षि) > कोख (हिन्दी की सभी बोलियों में)

(१८) कुडीरं, कुडिआ (वृत्तिविवरम्) > कुटीर (खड़ी बोली) > कुटी (अवधी तथा ब्रजभाषा) > कुटिया (भोजपुरी और बुन्देली)

(१९) कोइला (काष्ठाङ्गारः) > कोइला (ब्रज, अवधी तथा भोजपुरी > कोयला (खड़ी बोली)

(२०) कोप्पो (अपराधः) > कोप (हिन्दी की सभी बोलियों में)

(२१) कोलिओ (तन्तुवायः > कोली (खड़ी बोली > कोरी (ब्रजभाषा अवधी तथा भोजपुरी)

(२२) कोल्हुओ (इक्षुनिपीडनयंत्रम्) > कोल्हू (हिन्दी की सभी बोलियों में)

(२३) खट्टिको (शौनिकः) > खटीक (ब्रज, खड़ी बोली तथा गुजराती)

(२४) खड्डा (खनिः) > खड्डा (हिन्दी की खड़ी बोली, ब्रज) > खाड़ी (गुजराती में)

(२५) खडक्की (लघुद्वारम्) > खिड़की (ब्रज, खड़ी बोली) > खिरकी (ब्रज तथा भोजपुरी)

(२६) खद्दं (भुक्तम्) > खाया (हिन्दी की सभी बोलियों में)

(२७) खलइयं (रिक्तम्) > खाली (खड़ी बोली) > खाली (ब्रजभाषा और भोजपुरी)

(२८) खली (तिलपिण्डिका) > खली (खड़ी बोली) > खल (ब्रज तथा भोजपुरी में)

(२९) खाइया (परिखा) > खाई (खड़ी बोली ब्रज, अवधी तथा भोजपुरी, बुन्देली, राजस्थानी, गुजराती)

(३०) खल्ला (चर्म) > खाल (हिन्दी का सभी बोलियों में)

(३१) गायरी, गग्गरी (गर्गरी) > गागर (खड़ी बोली) > गगरी अवधी, ब्रजभाषा, भोजरी, बुन्देली)

(३२) गड्डरी (छागो) > गडेरी (अवधी) > गड़रिया (ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली)

(३३) गड्डी (लघुयानं) > गाड़ी (खड़ी बोली) > गड्डी (ब्रजभाषा)
(३४) गढ़ (दुर्गम्) > गढ़ (हिन्दी की सभी बोलियों में) > गढ़ी (छोटा गढ़ के अर्थ में)
(३५) गंडीरी (इक्षुखण्डम्) > गँडेरी (ब्रजभाषा तथा अवधी में) > गंडेली (खड़ी बोली)
(३६) गोवरं (करीषम्) > गोबर (हिन्दी) की सभी बोलियों में)
(३७) गुंदा (अधमः) > गुंडा (हिन्दी में)
(३८) घग्घरं (जघनस्थवस्त्रभेदः) > घाघरा (ब्रज तथा राजस्थानी)
(३९) घट्टो (नदीतार्थम्) > घाट (ब्रज, अवधी, भोजपुरी और खड़ी बोली आदि सभी हिन्दी की बोलियों में)
(४०) चउक्कं (चत्वरम्) > चौक (हिन्दी की सभी भोलियों में)
(४१) चवेडी (श्लिष्ट कर सम्पुरम्) 7 चपेट (हिन्दी की प्रायः सभी बोलियों में)
(४२) चाउला (तण्डुलाः) > चावल (हिन्दी की सभी बोलियों में)
(४३) चोट्टी (शिखा) > चोटी (हिन्दी की सभी बोलियों में)
(४४) छइल्लो (विदग्धः) > छैला (ब्रजभाषा तथा बुन्देली) > छबीला (खड़ी बोली)
(४५) छिणांली (जारः) > छिनाल (खड़ी बोली छिनार ब्रजभाषा तथा बुन्देली)
(४६) छेंडी (लघुरथ्या) > छेड़ी (ब्रजभाषा)
(४७) छल्ली (त्वक्) > छाल (हिन्दी की खड़ी बोली तथा ब्रजभाषा में)
(४८) छडाँ (विद्युत) > छटों (खड़ी बोली तथा ब्रज में > छडा राजस्थानी)
(४९) छेलग्रो (छागः) > छेर (ब्रज तथा भोजपुरी)
(५०) जोराणलिग्रा (धान्यम्) > जौंड़री (ब्रजभाषा) > जनरी (भोजपुरी) > जौंडरी > जुड़री (राजस्थानी)
(५१) जोवारी (धान्यम्) > जुआर (ब्रजभाषा)
(५२) झंखरो (शुष्कतरुः) > झांकर (ब्रजभाषा) > झंखर (बुन्देली) > झाड़-झंकारा (खड़ी बोली)
(५३) झड़ी (निरन्तर वृष्टिः) > झड़ी (ब्रजभाषा खड़ी बोली इत्यादि बोलियों में)
(५४) झमालं (इन्द्रजालम्) > झमेला (हिन्दी की सभी बोलियों में)
(५५) झलुसिग्रं (दग्धम्) > झुलसना (हिन्दी की सभी बोलियों में)

(५६) झाडं (लतागहनम्) > झाड़ (हिन्दी की सभी बोलियों में) ई प्रत्यय लगाकर झाड़ी प्रचलित है।

(५७) झुट्ठं (अलीकम्) > झूठ (हिन्दी की सभी बोलियों में)

(५८) टिक्कं (तिलकम्) > टीका (हिन्दी की प्राय: सभी बोलियों में)

(५९) टिप्पी (तिलकम्) > टिप्पी या टिपकी (हिन्दी की बोलियों में)

(६०) ठल्लो (निर्धन) > ठल्ला (हिन्दी में खाली के अर्थ में प्रयुक्त होता है)

(६१) डलो (लोष्ठम्) > डला (खड़ी बोली) > डेला या ढेला ब्रजभाषा तथा बुन्देली)

(६२) डाली (शाखा) > डाली (हिन्दी की सभी बोलियों में)

(६३) डुंगरो > डूंगर (पहाड़) इसी से डुग्गर बना है।

(६४) डोला (शिविका) > डोला (हिन्दी की सभी बोलियों में)

(६५) ढंकसी (पिधानिका) > ढकनी, ढकना (हिन्दी में)

(६६) ढेंका (कूपतुला) > ढेंकुल या ढेंकुली (ब्रजभाषा में)

(६७) तग्गं (सूत्रम्) > तागा (खड़ी बोली और उर्दू में)

(६८) दअरी (सुरा) > दारु (हिन्दी की बोलियों में)

(६९) दोरो (सूत्रम्) > डोरा (हिन्दी में)

(७०) पलही (कपास:) > पेहला या पैला (ब्रजभाषा में)

(७१) पंखुड़ी (पत्रम्) > पंखड़ी (हिन्दी की खडी बोली और बुन्देली में)

(७२) पूणी (तूललता) > पूनी या पौनी (हिन्दी की बोलियों में)

(७३) पोट्टं (उदरम्) > पेट (हिन्दी की बोलियों में)

(७४) पोत्तओ (वृषण:) > पोता या फोता (हिन्दी में)

(७५) बोक्कड़ो (छाग:) > बोकरा (ब्रजभाषा) > बकरा > (हिन्दी खड़ी बोली में)

(७६) पप्पीहो (चातक:) > पपीहा (हिन्दी की सभी बोलियों में)

(७७) परिहणं (परिधानम्) > पहिरन (ब्रज, अवधी में) इसी से कश्मीरी पयहरन बना है।

(७८) पेड्डा (महिषस्यशावक) > पड़ड़ा ब्रज)

(७९) भाओ (ज्येष्ठभगिनीपति:) > भउआ (बुन्देली में)

(८०) फग्गू (बसंतोत्सव:) > फाग (ब्रज, अवधी में)

(८१) मम्मी, मामी (मातुलानी) > मामी (हिन्दी की सभी बोलियों में प्यार में मम्मी का प्रयोग होता है।)

(८२) मक्कोड़ा (कीट में विशेष) > मकोड़ा (खड़ी बोली) मकड़ा (ब्रज में)

(८३) सोहणी (सम्मत्जनी) > सोहनी (हिन्ही में) (खेत निलाना)

(८४) हड्ड (अस्थि) > हड्डी या हाड़ (हिन्दी की सभी बोलियों में)

(८५) वड्डो > बड़ा (खड़ी बोली और बुन्देली में) > बड़ो (ब्रज में)

(८६) हरिआली (दूर्वा) > हरियाली (हिन्दी की सभी बोलियों में)

(८७) हिल्लूरी (उत्ताल तरंग) > हिलोर (हिन्दी में)

इसी प्रकार के अनेक और प्राकृत शब्द हैं जिन की व्युत्पत्ति निकालना सम्भव नहीं है। ये देशी शब्दों के रूप में हिन्दी में प्रचलित हैं। कुछ शब्दों के अर्थ परिवर्तित हो गये हैं। उदाहरण के लिए प्राकृत के कुछ तत्सम शब्द संस्कृत में मिलते हैं लेकिन उनका भिन्न अर्थ है। उदाहरण के लिए कुछ शब्द देशी नाम माला से उद्धृत किये जाते हैं—

(१) उच्चं (नाभितलं)— संस्कृत में उच्च शब्द का अर्थ ऊँचा तथा श्रेष्ठ है लेकिन प्राकृत में इसका अर्थ नाभि की गहराई है।

(२) उच्चारो (विमलः)— संस्कृत में इसका अर्थ उच्चारण, कथन, लम और विष्ठा है लेकिन यहाँ उच्चार शब्द का अर्थ निर्मल है।

(३) कलंको (वंशः)— संस्कृत में इस शब्द का अर्थ चिह्न धब्बा, दोष तथा लांछन है लेकिन यहाँ यह शब्द बांस के अर्थ में है।

(४) कमलो (पिठरः)— संस्कृत में कमल शब्द जल में पैदा पुष्प के अर्थ में है लेकिन यहाँ इसका अर्थ बर्तन है।

(५) कली (शत्रुः)— संस्कृत में कलि शब्द का अर्थ कलियुग बहेड़े का वृक्ष, शूरवीर और विवाद है लेकिन यहाँ शत्रु के अर्थ में है।

(६) कुमारी (चंडी)—संस्कृत में कुमारी शब्द का अर्थ कन्या, बड़ी इलायची, चमेली, दुर्गा, पार्वती, सीता है लेकिन यहाँ क्रुद्ध नारी के अर्थ में है।

(७) तमो (शोकः)— संस्कृत में इस शब्द का अर्थ अंधकार, राहु, मोह, नरक है लेकिन यहाँ इसका अर्थ शोक है।

(८) तलं (ग्रामेशः)—संस्कृत में तल का अर्थ अधोभाग, पैंदा, पाताल, मध्यदेश, स्वभाव, जंगल, गड्ढा घर की छत, थप्पड़, तमाचा, ताड़का

वृक्ष, मूलदेश, हथेली, पैर का तलवा, तलवार की मूठ, गोह, कलाई, पहुँचा, नरक का नाम, सहारा आधार, जल के नीचे की भूमि, सीना, महादेव है, लेकिन यहाँ ग्रामाधिपति या मुखिया के अर्थ में है।

(९) पलं (स्वेद)—संस्कृत में पल शब्द का अर्थ मांस, क्षण (घड़ी का साठवाँ भाग), धान का पुआल, चलने की क्रिया, छल, तराजू, मूर्ख और पलक है लेकिन इस कोश में पल का अर्थ पसीना है।

(१०) माला (ज्योत्स्ना)—इस शब्द का अर्थ संस्कृत में श्रेणी, पंक्ति, गले में पहनने का पुष्पहार, गजरा, माला है। लेकिन यहाँ इसका अर्थ चाँदनी है।

(११) वल्लरी (केशः)— संस्कृत में वल्लरी शब्द का अर्थ मंजरी, लता, बाजा है लेकिन यहां केश के अर्थ में प्रयुक्त है।

हेमचन्द्र के प्राकृत कोश में ऐसे अपभ्रंश के शब्द भी हैं जिनका तत्सम रूप संस्कृत में मिलता है —

अपभ्रंश		संस्कृत		हिन्दी
अच्छरा	>	अप्सरा (संस्कृत)	>	अछरा अछरी
अच्छरिज्ज	>	आश्चर्य	>	अचरज
अन्धलो	>	अन्धकारः	>	आँधरो
आसीसा	>	आशीः	>	असीस
कुम्भार	>	कुम्भकारः	>	कुम्हार
घाउ	>	घातः	>	घाव
चिहुर	>	चिकुर	>	चिकुर
तूर	>	तूर्य	>	तूर्य
थूणा	>	स्थूणा	>	थूनी
दुवार	>	द्वार	>	दुआर
देउल	>	देवकुल	>	देवकुल
धणुहः	>	धनुः	>	धनुहा, धुनहा
नवल्लो	>	नवः (नवलः)	>	नया
पाओ	>	पादः	>	पाँव
पिआस	>	पिपासा	>	प्यास

बेल्ल:	>	बिल्व	>	बेल
माउसिश्रा	>	मातृसा	>	मौसी
ररांण	>	श्ररराय	>	रन > बन
राउल	>	राजकुल	>	राउर
लोग	>	लोक	>	लोग
वक्कल	>	वल्कल	>	बोकला
वक्खाय	>	व्याख्यान	>	वखान
वाउल	>	व्याकुल	>	व्याकुल
विहाण	>	विहान	>	विहान
संकलं	>	शृंखला	>	साँकल
संघारो	>	संहार	>	संहार
संझा	>	सन्ध्या	>	संध्या, साँझ
सहरी	>	शफरी	>	शफरी
सुक्ख	>	शुष्क	>	सूखा

अपभ्रंश साहित्य से लिये गये शब्द :—

अपभ्रंश साहित्य में ऐसे अनेक शब्द हैं जिन्हें आज की हिन्दी में प्रयुक्त किया जा रहा है। उदाहरण के लिए स्वयंभू के पद्म चरित्र 'पउमचरिउ' से ली गई निम्नलिखित शब्दावली देखिये—

	अपभ्रंश		हिन्दी
(१)	अक्खाडय	(४/११)	अखाड़ा
(२)	उत्तावलिय	(३६/१५)	उतावली
(३)	कंक्कर	(२४/३)	कंकड़
(४)	कल्लूरिय	(४५/१२)	कलवार
(५)	कल्लए	(२/१२)	कल
(६)	खञ्च	(३/१२)	खींच
(७)	घरवार	(२४/१२)	घरद्वार या घरवार
(८)	छाहि	(२६/१३)	छाँह
(९)	झुम्बुक्क	(५५/५)	झूमक, झुमका
(१०)	टाल	(१२/२)	टालना (टालमटाल)
(११)	ढडढस	(४६/१७)	ढाढ़स

(१२)	ढोय	(२/१६)	ढोना
(१३)	ढोर	(२/७)	पशु
(१४)	णत्थ	(४७/१)	नथ
(१५)	तुरन्त	(४/३)	तुरन्त
(१६)	थाह	(२०/४)	थाह
(१७)	दाय	(५३/१२)	दाव
(१८)	पणाल	(१६/१०)	पनाला, परनाला
(१६)	पप्पड़	(५०/११)	पापड़
(२०)	पायाल	(१२/८)	पायल
(२१)	पुट्ठि	(५/१६)	पुट्ठा
(२२)	भेट्ट	(४६/४)	भेंट
(२३)	मेहली	(७८/७)	मेहरी
(२४)	रसोइ	(१७/१३)	रसोई
(२५)	रोक्क	(१७/६)	रोक
(२६)	रोग्ग	(२८/६)	रोग
(२७)	लड्डु	(५०/११)	लड्डू
(२८)	वारिय	(३८/१८)	वारी (क्रम)
(२६)	सालण	(५०/११)	सालन (पका हुआ मांस)
(३०)	साहार	(६/११)	सहारा
(३१)	साहुक्कार	(२/१३)	साहुकार
(३२)	सुज्झ	(८/२)	सूझ

इसी प्रकार के कुछ शब्द 'महावीर चरित' (जिनेश्वर सूरि के शिष्य द्वारा विरचित) ग्रन्थ से संकलित किये जा सकते हैं जिनका आधुनिक हिन्दी में प्रचुरता के साथ प्रयोग किया जाता है—

	अपभ्रंश		हिन्दी
(१)	कुंड	(४/३/७)	कुंड
(२)	खुरप्प (सं० क्षुरप्र)	(११/१/६)	खुरपा
(३)	गिल्ल	(२६/५/३)	गीला
(४)	घल्लइ	(३/१६/१०)	घालना (फेंकना)
(५)	चक्खइ	(२/१६/४)	चाखना, चखना
(६)	चडई	(२/१६/१)	चढ़ना

(७)	चडाविग्र	(३०/१२/६)	चढ़ाना
(८)	चुणइ	(१६/१३/१२)	चुनना
(६)	छज्जइ	(१/१४/३)	छाजै
(१०)	छंडइ	(७/१६/१५)	छाँडना या छोड़ना
(११)	छिवइ	(४/५/१३)	छूना
(१२)	छिंक	(२६/४/२)	छींकना
(१३)	जेंवइ	(१८/७/११)	जेंवना, जीमना
(१४)	जोक्खइ	(४/५/५)	जोखना (तोलना)
(१५)	झडप्पइ	(३०/४/६)	झपट
(१६)	झड़प्पण	(२५/४/८)	झड़प (फटकारना)
(७)	झुल्लइ	(१४/५/१२)	झूल (झूलना)
(१८)	टक्कर	(३१/१६/४)	टक्कर
(१६)	डंकिय	(३०/२२/८)	डंक मारना
(२०)	ढलइ	(३१/१६/१२)	ढालना
(२१)	ढलिग्र	(८/६/१२)	ढीला
(२२)	तिया	(१/१५/४)	तिया, तिरिया
(२३)	तोंद	(२०/२३/३)	तोंद
(२४)	पोहल	(२०/१०/२)	पोटली
(२५)	बुड्डइ	(३३/११/११)	बूडइ (डूबना)
(२६)	बोहित्थ	(१७/४/४)	बोहित (नाव)
(२७)	भुक्कइ	(१/८/७)	बुक्कइ (भूँकना)
(२८)	भोल	(२/२०/७)	भोला
(२६)	मेलग्र	(३३/३/८)	मेला
(३०)	रंडी	(१७/६/१०)	रंडी (वेश्या)
(३१)	रंगइ	(४/१/११)	रेंगइ (रेंगना)
(३२)	रेल्ल	(१४/१ /१)	रेला, (पानी का बहना)
(३३)	लुक्क	(६/१४/१२)	लुकना (छिपना)
(३४)	बिसूरइ	(१४/५/१०)	(विसूरना (दुःख करना)
(३५)	साडी	(१२/५/३)	साड़ी
(३६)	सिप्पि	(४/६/११)	सीपी, सीप
(३७)	हट्ट	(१/१६/१)	हाट (बाज़ार)

(३८) हल्लइ (१४/५/१२) हिलना

(३६) होहल्लर (४/४/१४) होहल्ला (शोरगुल)

अवहट्ट भाषा के शब्द :– अपभंश भाषा के आगे अवहट्ट भाषा का विकास हुआ है। विद्यापति की शब्दावली अपभ्रंश भाषा से आगे विकसित होने वाली अवहट्ट भाषा का ही रूप है। 'कीर्तिलता' से विद्यापति की निम्नलिखित धातुओं को ऊद्धृत किया जा सकता है जिनका सम्बन्ध अवहट्ट भाषा से है जो आगे चलकर हिन्दी का धातु कोश निर्मित करती है :—

(१) कढंता— (पृष्ट ६७) = पढ़ते हुए, प्राकृत में कड्ढ=पढ़ना, उच्चारण करना, संस्कृत कृष् का धात्वादेश > कड्ढ=पढ़ना, उच्चारण करना। भोजपुरी में 'कढाव कढ़ावा, कढ़ाओं अर्थात् गीत उच्चारण करो, अभी तक प्रयोग में लाया जाता है। ब्रजभाषा में "तू चिट्ठी काढ़ि लेगो ? का प्रयोग 'पढ़ने' के अर्थ में अभी तक होता है।

(२) घल – (पृ॰ २६१) > घल्ल (प्राकृत) > क्षिप् का धात्वादेश (संस्कृत)> घालना (हिन्दी) अयोध्यासिंह उपाध्याय ने इसी धातु रूप का प्रयोग 'डालने' के अर्थ में किया है।—

पलंग से पलना पर घालके
जननि थी मुख-इन्दु विलोकती।

(३) चढ़ाव६— (पृ॰ ११५) > चढ़इ (प्राकृत) > आरुह्, का धात्वादेश संस्कृत) > चढावइ (हिन्दी) = चढ़ाता है।

(४) चामर— (१६०) > भ्रम का धात्वादेश (संस्कृत) > पर (प्राकृत, अपभ्रंश) > चँवर (हिन्दी)=घूमना

(५) चुक्कओ - (४६) संस्कृत भ्रंश का धात्वादेश 7 चुक्क (प्राकृत) > चूक हिन्दी = भ्रष्ट होना या चूकना।

(६) छाज — (६०) संस्कृत राज् का धात्वादेश छज्ज (प्रा०) = शोभादेना > छाजना (हिन्दी)

(७) छाडि— (२६८) = छोड़कर। संस्कृत मुच् का धात्वादेश > छड्ड (प्राकृत) > छोड़ना (हिन्दी)

(८) झूल— (७४) = आन्दोलन, शोर, संस्कृत शब्द आन्दोल का प्राकृत धात्वादेश > झुल्ल > झूलना (हिन्दी) जैसे - जसोदा हरि पालने झुलावै।

(९) थेव्व-दण्ड (२८४) = सहारे की थूनी, संस्कृत विगल का धात्वादेश थिप्प > थेव्व (प्रा॰) 7 टेक (हिन्दी) = सहारा।

(१०) दरमलिअ (२६५) = मर्दित, चूर्णित, संस्कृत मर्दय का धात्वादेश > दरमल (प्रा॰ तथा अपभ्रंश) 7 दलिअ (हिन्दी) = दलना।

(११) पारइ— (१६१) = सकना, संस्कृत शक् का धात्वादेश 7 पार (प्राकृत) 7 पार (हिन्दी) = समर्थ होना।

(१) पेल्लिअ (६५) संस्कृत पूरय् = पूरा करना का धात्वादेश 7 पेल्ल (प्राकृत) 7 पेलना (हिन्दी) = दबाना। जैसे = सरसों पेलना या ईख पेलना। प्राकृत में पेल्ल धातु के चार अर्थ हैं:—

(क) संस्कृत क्षिप् का धात्वादेश पेल्ल = फैंकना
(ख) संस्कृत प्रेरय का धात्वादेश ,, = प्रेरित करना
(ग) संस्कृत पीडय् का धात्वादेश ,, = दबाना
(घ) संस्कृत पूरय् का धात्वादेश ,, = पूरा करना, भरना

(१३) बोलि (११८), संस्कृत कथय् का धात्वादेश > बोल्ल (प्राकृत) > बोलना (हिन्दी)

(१४) भूलल (२५७) संस्कृत भ्रंश का धात्वादेश > भुल्ल (प्राकृत तथा अपभ्रंश) 7 भूलना (हिन्दी) > भूलल (भोजपुरी.)।

प्राकृत अवहट्ट के शब्द :— कीर्तिलता में अनेक ऐसे संज्ञा-शब्द भी विशिष्ट प्राकृत अवहट्ट और प्राचीन मैथिली रूपों में प्रयुक्त हुए हैं जिनका आधुनिक हिन्दी से घनिष्ठ सम्बन्ध है :—

(१)	अओका	(२/१६३)	>	इसका
(२)	अङ्ग चङ्गे	(४/७०)	>	चङ्गे मङ्गे
(३)	अज्जणे	(१/४८)	>	अर्जन में
(४)	अवसओ	(१/२०)	>	अवश्य
(५)	आअत (अधीन)	(३/५५)	>	आयत्त
(६)	आन	(२/१८५)	>	अन्न

(७)	इअरो	(१/४६)	>	इतर
(८)	उव्वेअ	(३/५४)	>	उद्वेग
(९)	ओआरापारा	(·/१८०)	>	वारपार
(१०)	ओकीहाट (अवक्रीताहाट)	(२/१२६)	>	स्त्रियों की हाट, शृंगार हाट
(११)	कइकुल	(२/१४)	>	कविकुल
(१२)	कसवट्ट	(३/११८)	>	कसौटी
(१३)	काछ (पं० कक्ष्या)	(४/१६)	>	काछ (पार्श्वभाग)
(१४)	कोसीस (कपिशीर्ष)	(२/६८)	>	कंगूरे
(१५)	गण्डअ (गण्डक)	(३/११२)	>	गंडे (चार)
(१६)	गन्दा (कंदुक)	(२/१६१)	>	गेंद (खेलना)
(१७)	गड्डु	(२/१८३)	>	गडुआ (लोटा)
(१८)	गुग्गुरावर्त	(२/·०४)	>	गड़गड़ाहट
(१९)	गेंट्टि (ग्रन्थि)	(३/३३)	>	गाँठ
(२०)	गोट्ठओ (गोष्ठी)	(२/२१२)	>	गोठ (समूह) या गोष्ठी
(२१)	गोओलि	(२/१५२)	>	गोवाल, गोपाल
(२२)	जाण (ज्ञानिन)	(३/१०३)	>	जानने वाला
(२३)	जालओष	(२/८५)	>	जाल, जाली
(२४)	जुवल	(३/३३)	>	युगल
(२५)	जोअराण	(२/७०)	>	जवान
(२६)	झला (ज्वाला)	(४/२३०)	>	झला (चमक)
(२७)	टाङ्कारे	(२/१०१)	>	टंकार, टोंगुर = टंकार करने वाला
(२८)	डड्ढिअ	(३/११४)	>	दग्ध
(२९)	णाअर	(१/२६)	>	नागर
(३०)	तत्त (तप्त)	(२/१६८)	>	तत्ता = गरम
(३१)	देउर (देवकुल)	(२/२०७)	>	देवकुल = मन्दिर
(३२)	कटकहि	(४/८६)	>	कटक = सेना
(३३)	टोप्परि (देशज टोप्पर)	(४/२३१)	>	टोपा
(३४)	पच्चूस (सं• प्रत्यूप)	(३/३)	>	प्रातः काल
(३५)	पाट (सं० पट्ट)	(४/५०)	>	पट्टा

(३६)	पारारी (परकीय)	(४/१७८)	>	पराई
(३७)	वाँकुले (वक्र)	(४/४३)	>	वाँका
(३८)	विमालि विह्वल)	(३/९)	>	विहाल
		कैसे विहाल विवाइन सौं (सुदामा च०)		
(३९)	मटभेला (मुठभेड़)	(४/२२४)	>	मटभेरा मारना= मटकना
(४०)	सिम्रा (सं० शिवा)	(४/२००)	>	सिम्रार (शृंगाल)=गीदड़
(४१)	सिम्रान (सं० सज्ञान)	(२/२४६)	>	सिम्राना (चतुर)
(४२)	सेर सं० स्वैर)	(३/२०)	>	सैर= (स्वच्छन्दता-पूर्वक घूमना)
(४३)	हेड़ा	(२/१७६)	>	हेड़ा (पशुओं का झुंड)

३. विदेशी भाषाओं के शब्द :— फारसी और अरबी भाषाओं का प्रभाव सबसे पहले सिन्ध, पंजाब और कश्मीर की भाषाओं पर पड़ा है। ये तीनों भाषाएँ आर्य-परिवार की भाषाएँ हैं तथा हिन्दी, मराठी और बंगला के समान ही इनका सम्बन्ध प्राकृत, अपभ्रंश तथा संस्कृत से है। लेकिन सिन्धी, कश्मीरी और पंजाबी में अरबी तथा फारसी के इतने शब्द आगये हैं कि आर्य भाषाओं की प्राकृति धुँधली पड़ गई है।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से उर्दू भी हिन्दी का ही एक रूप है लेकिन उसकी लिपि फारसी होने के कारण लोग उसे हिन्दी से भिन्न समझते हैं। दूसरी भिन्नता थोड़े से फारसी व्याकरण सम्बन्धी नियमों के आधार पर है। शब्दों का साम्य, वाक्य-विचार, मुहावरे हिन्दी तथा उर्दू को एक ही वंश की भाषाएँ सिद्ध करते हैं। अरबी तथा फारसी शब्दों का प्रवेश बंगला, गुजराती मराठी, पंजाबी, हिन्दी इत्यादि सभी भाषाओं में हुआ है। फारसी तथा अरबी शब्दों को आत्मसात् करते हुए विद्यापति, कबीर, रज्जब, जायसी, तुलसी और केशवदास ने अपनी हिन्दी भाषा को हिन्दुई, हिन्दवी या रेखता का नाम न देकर उसे भारवा (भाषा) कहा है :—

(१) संसकिरत है कूप जल, भाखा बहता नीर।

—कबीरदास

(२) पराकिरत मधि ऊपजे, संसकिरत सब वेद।
अब समझावै कौन करि, पाया भाखा भेद ॥

—रज्जब

(३) आदि अन्त जस गाथा अही,
कह चौपाई भाखा कही ।
—जायसी

(४) भाखा भणित मोरि मति थोरी ।
हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी ॥
—तुलसीदास

(५) भाखा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास ।
भाखा कवि भो मन्दमति, तेहि कुल केसव दास ॥
—केशवदास

विद्यापति, चंदवरदाई तथा तुलसीदास ने अरबी और फारसी शब्दों का इतना अधिक प्रयोग किया है कि सिद्ध हो जाता है कि इन कवियों की दृष्टि साम्प्रदायिक नहीं थी । पृथ्वीराजरासो का कवि इस्लाम के प्रति आदरभाव प्रकट करता हुआ कहता है कि उसके काव्य में पुराण ही नहीं कुरान का भी वर्णन है :—

उक्ति धर्म विशालस्य राजनीति नवं रसं ।
षट् - भाषा पुराणं कुरानं कथितं मया ॥
—पृ० रासो समय १ रूपक ३८ ।

रामायण में हिन्दू संस्कृति तथा दर्शन का समावेश है लेकिन इस धार्मिक काव्य में भी अरबी-फ़ारसी शब्दों का प्रयोग कवि की व्यापक तथा उदार दृष्टि को सिद्ध करता है :—

(१) गनी गरीब ग्राम नर नागर ।
(२) साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास ।
(३) वर लायक दुलहिन जग नाहीं ।
(४) बहु जिनस प्रेत-पिशाच जोगि जमात बरनत नहिं बने
(५) बन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को ही कही ।
(६) चारु बजारु विचित्र अँबारी ।
(७) कुम्भकरण कपि फौज बिडारी ।
(८) राम धनुष तोरब सक नाहीं । इत्यादि ।

मध्ययुगीन हिन्दी कवियों की भाषा सम्बन्धी नीति पर भिखारी दास ने

प्रकाश डाला है। उनके मतानुसार तुलसी और गंग श्रेष्ठ अग्रणी कवि हैं क्योंकि उनकी भाषा में अनेक भाषाओं (अरबी फारसी आदि) के शब्द सहज रूप में मिले होते हैं :—

तुलसी गंग दोऊ भये सुकविन को सरदार।
जिनके काव्यन में मिली भाषा विविध प्रकार॥

हिन्दी का अरबी से कोई पारिवारिक सम्बन्ध नहीं है लेकिन फारसी और हिन्दी मौसेरी बहनें हैं। ऐसा सिद्ध हो चुका है कि ज़ेन्दावेस्ता की भाषा और वैदिक संस्कृत का एक ही रूप था। आज भी फारसी तथा संस्कृत के शब्दों में यह समानता देखी जा सकती है।—

	संस्कृत शब्द		फारसी शब्द
(१)	श्वशुर	—	ससुर
(२)	पृष्ठ	—	पुश्त
(३)	अस्ति	—	अस्त
(४)	गो	—	गाव
(५)	आप (जल)	—	आब
(६)	अश्व	—	अस्प
(७)	शर्करा	—	शकर
(८)	हस्त	—	दस्त
(९)	बाहु	—	बाज़ू
(१०)	पाद (पैर)	—	पा
(११)	गोधूम	—	गन्दुम
(१२)	तारा	—	तारा
(१३)	पंच	—	पंज
(१४)	चत्वार	—	चहार
(१५)	सप्त	—	हफ्त
(१६)	हर्म्यं	—	हरम
(१७)	चक्षु	—	चश्म
(१८)	चक्र	—	चर्ख़
(१९)	अहिफेन	—	अफयून (अफीम)
(२०)	तृष्णा	—	तिश्ना

(२१)	भ्रू	—	अब्रू
(२२)	अभ्र	—	अब्र
(२३)	मेघ	—	मेग
(२४)	सायं	—	शाम
(२५)	कर्पूर	—	काफ़ूर
(२६)	मुष्टि	—	मुश्त
(२७)	पितृ	—	पिदर
(२८)	मातृ	—	मादर
(२९)	भ्रातृ	—	बिरादर
(३०)	दर	—	द्वार इत्यादि

विद्यापति की 'कीर्तिलता' में अरबी, फारसी के सैकड़ों शब्द हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि हिन्दी तथा उर्दू दोनों भाषाएँ एक साथ एक ही रंग में रंगी हुई थीं। यह रंग प्रेम का था। इससे यह भी सिद्ध होता है कि तुलसी से पहले पन्द्रहवीं शती के आरम्भ में ही हिन्दी भाषा अपने पैर में अरबी फारसी के शब्दों को सहज रूप से पचाने लगी थी। हिन्दी के विकास का अध्ययन करने के लिए ये शब्द बहुत सहायक सिद्ध होंगे :—

(१)	अदप	(३/४१)	⟶	अदब
(२)	ऊँमारा	(३/३५)	⟶	उमरा
(३)	उज्जीर	(३/६)	⟶	वज़ीर
(४)	एकचोई	(४/१२०)	⟶	एकचोबी तम्बू
(५)	कलामेजिअन्ता	(२/१७१)	⟶	जिसे कुरान याद हो, हाफिज़
(६)	कलीमा	(२/७१)	⟶	कलमा
(७)	कसीदा	(२/१७२)	⟶	कसीदा (प्रशस्तिगीत)
(८)	कादी	(४/७)	⟶	क़ाज़ी
(९)	कूजा	(२/१६२)	⟶	कूज़ा = सुराही
(१०)	खत	(४/८)	⟶	खत
(११)	षराव	(२/१७८)	⟶	खराब
(१२)	खाण	(२/१८०)	⟶	खान (खांसाहब)
(१३)	पास दरबार	(२/२३२)	⟶	दरबारे खास
(१४)	षुन्दकार	(४/ ३)	⟶	खुन्दकार = काज़ी

(१५)	पोआर-गाह	(२/१३६)	→ खोआरगाह (खाने का कमरा)
(१६)	पोजा	(२/१६६)	→ ख़्वाजा
(१७)	पोरमगह	(२/२३६)	→ खुर्रमगाह = सुख-मन्दिर)
(१८)	गरुअमलिक	(४/१५७)	→ बड़े मालिक
(१९)	गालिम (अरबी)	(२/२१८)	→ गिलमान = नौजवान
(२०)	गुण्डा	(२/१७४)	→ गुन्दः = गोला
(२१)	तकत	(४/१४०)	→ तख़्त
(२२)	तकतान	(३/६४)	→ तख़्तेखाँ = यात्रा का सिंहासन
(२३)	तजान	(४/३८)	→ ताजियाना = चाबुक
(२४)	तश्थ	(२/१६२)	→ तश्तरी
(२५)	तवेल्ला	(२/१६२)	→ कूँड़ा
(२६)	ददस (अरबी)	(२/१९०)	→ हदस = प्रेतात्माओं का दर्शन कराना
(२७)	दवाल	(२/२३८)	→ दुआल = चमकती तलवार
(२८)	दरसदर	(२/२३६)	→ राजकुल का मुख्य-द्वार
(२९)	दहलेज	(४/९०)	→ दहलीज़ = ड्योढ़ी
(०)	दारिगह	(२/२३६)	→ दरगाह
(३१)	दिरम	(२/१७८)	→ दिरम = रुपया-पैसा
(३२)	देमान	(३/४१)	→ दीवान = वज़ीर
(३३)	दोआ (अरबी)	(२/१८६)	→ दुआ
(३४)	नीमाज़ (अरबी)	(१/१६६)	→ नमाज़
(३५)	नेवाल	(२/१८२)	→ निवाला = ग्रास
(३६)	पइज्जलल	(२/१६८)	→ पैजार = जूते
(३७)	पएदा	(४/२६)	→ प्यादा = पैदल चलने वाला
(३८)	पापोस	(३/१५)	→ पायपोश = जूता
(३९)	फरमाण	(३/१५७)	→ फ़रमान = शाही हुक्म
(४०)	वजारी	(२/१५८)	→ बाज़ार

(४१)	वल्लीग्र	(२/१६६)	→	वली
(४२)	वाँग	(२/१६४)	→	अज़ान
(४३)	विसवासि (अरबी)	(२/७)	→	वसवासी = शैतान
(४४)	मषदूम	(२ १६०)	→	मख़दूम = धर्मगुरु
(४५)	मगानी	(४/१५७)	→	मक़ानी (ऊँचे पद वाला)
(४६)	मगोल	(४/७२)	→	मुग़ल
(४७)	मतरूफ़	(२/१८६)	→	प्रशंसा-गान
(४८)	मुलुक्का	(२/२१७)	→	मलिक = सरदार
(४९)	लामे (अरबी)	(२/२२३)	→	लमहा = क्षणभर
(५०)	सइग्रद (अरबी)	(२/२२०)	→	सैयद
(५१)	सरइचा (अरबी)	(४/१२०)	→	शिरायचः राजकीय तम्बू
(५२)	सरमाणा	(४/१२०)	→	शरवान = शाहि-शामियाना
(५३)	सरमी	(४/१७१)	—	शरमदार
(५४)	सालण	(२/१८१)	→	सालन (देशी शब्द भी है)
(५५)	सुरताण	(१/७३)	→	सुलतान
(५६)	सेरणी	(२/१८८)	→	शीरीनो = मिठाई, प्रसाद
(५७)	हसम (अरबी)	(४/७)	→	हश्म = पैदल फौज

इसी प्रकार के अरबी तथा फारसी के अनेक ऐसे शब्द हैं जिनकी गणना करना बहुत कठिन है। यद्यपि पायजामा, इज़ारबन्द, रुमाल, दोशाला शाल, पुलाव, और अंचार आदि का प्रचलन मुसलमानों के आगमन से पहले भी था। लेकिन इन चीजों के लिए प्रयुक्त शब्दों का पता नहीं है। आभूषणों में हमेल, बाजूबन्द, ज़ंजीर और पायजेब पहले भी पहने जाते थे उनके संस्कृत में नाम भी मौजूद हैं। हुक्का, नैचा, चिलम, बन्दूक, तख्ता, बादाम, मुनक्का, बेदाना, आदमी, ख़र्च, गुलाब, चश्मा, साहब, बीवी, माल-असबाब, हक़, फुरसत, हकीम, हुक्काम, अजनबी, मुकदमा, अदालत, सिफ़ारिश, इम्तहान, औरत, तारीख़, ख़ूबानी, अंजीर, सेब, अनार, जलेबी, बालूशाही, मुरब्बा, गुलाब, तश्तरी, चमचा, शीशी, शीशा, दलाल, वकील, सर्राफ़, लिहाफ़, तकिया, तोशक,

चादर, तबियत, मिज़ाज, बर्फ़, दावात, दावत, चश्मा, सन्दूक, कुरसी, लगाम, जीन, तंग, रकाब, जहाज, पर्दा, दालान, रुख, मल्लाह, रसद, कारीगर, जैसे विदेशी शब्दों को हिन्दी से नहीं निकाला जा सकता है। यहाँ तक कि कुछ फारसी के शब्दों के पर्याय संस्कृत में हैं फिर भी जनता विदेशी शब्दों का ही प्रयोग करने में रुचि लेती है। जैसे—

संस्कृत	विदेशी
कपोत	कबूतर
आकृति	चेहरा
श्रमिक	मज़दूर
मसि	स्याही, रोशनाई
मसिपात्र	दवात
लेखनी	क़लम
पाटल	गुलाब
नवीन	ताज़ा
कपोल	गाल
चिकित्सालय	दवाखाना
कृषक	किसान
कृषि	खेती
उत्कोच	रिश्वत
अभिशंसा	सिफारिश
दर्शक	तमाशायी
प्रतिनिधि	नुमायंदा
समाचार	ख़बर
आभूषण	जेवर या गहना
आदेश	हुक्म
मधुकर, मधुप	भँवरा
असमर्थ	नाकाम
रणक्षेत्र	मैदाने जंग
स्वीकृति	मंजूरी
विवशता	मजबूरी
आयु	उम्र

प्रान्त	सूबा
स्थिति	हालत
समाचार पत्र	अख़बार
पताका	झंडा
कार्यालय	दफ्तर
वर्तमान	मौजूदा
संशोधन	तब्दीली
पृथ्वी	ज़मीन
वायुयान	हवाई जहाज
पराधीनता, परतंत्रता	गुलामी
स्वाधीनता	आज़ादी
रिक्त स्थान	खाली जगह
अनभिज्ञ	अजनबी
बलिदानी	शहीद
निर्णालय	अदालत
प्रणय	मुहब्बत
प्रदर्शनी	नुमायश
तुला	तराज़ू
शिक्षित	पढ़ालिखा
अशिक्षित	अनपढ़
अज्ञात	अनजान
अतिथि	मेहमान
तत्पर या सन्नद्ध	तैयार
भय	डर
प्रारम्भ करना	शुरू करना इत्यादि

केवल संज्ञा और विशेषण ही नहीं क्रिया विशेषणों के अरबी-फारसी रूप हिन्दी में काफी लोकप्रिय तथा रुचिकर सिद्ध हुए हैं :—

जल्द, बिलकुल, यानी, बेशक, अलबत्ता, ज़रूर-ज़रूर, हरगिज़, क़रीब-क़रीब, वग़ैरह, फौरन, मसलन, शायद, खैर, वाक़ई, राज़ी-खुशी, बदले, लायक, बाबत, खातिर, खैर, वास्ते, तरफ़, बाद, सिवा, सिवाय, मगर, अलावा, लेकिन, व वर्ना, बावजूद, बशर्ते, अगर, अगर्चे, चूंकि, बल्कि, ताकि, गोयाकि, व अगर

शब्द अरबी-फारसी के होते हु भी अब हिन्दी भाषा के अंग बन गये हैं। अगर इन शब्दों को हिन्दी से निकाल दिया जाय तो भाषा की लोच में बहुत कमी आ जायेगी।

अरबी-फारसी के शब्दों के अतिरिक्त तुर्की भाषा के शब्द भी घुलमिल गये हैं।

तुर्की भाषा के शब्द :— उर्दू, तोप, बावर्ची, क़ालीन, क़ाबू, अलमारी, कुमुक, लाश, तमगा, आक़ा, उज़बक, बीवी, बेगम, दारोग़ा, ग़लीचा, क़ोर्मा, बहादुर, कोतल, चकमक इत्यादि

अंग्रेजी भाषा के शब्द :— इजन, ड्राइवर, मोटर, रेल, स्टेशन, रेडियो, पेट्रोल, अस्पताल, डाक्टर, कांग्रेस, कमेटी, कम्यूनिस्ट, सिनेमा, बटन, मास्टर, सिगरेट, मैच, क्लर्क, पोस्टकार्ड, बकस, नोट, स्कूल, स्टूल, रजिस्टर, बिल, टेबिल, इंच, फुट, लान, फंड, टेनिस, क्रिकेट, हाकी, फुटबाल, वालीबाल, ट्रेन, पेन, पेंसिल टिकट, कौंसिल, थियेटर, ड्रामा, एक्टर, हीरो, हीरोइन, विलेन, वेम्प, कलक्टर, प्रेस, कापी, अपील, लालटेन आदि

ग्रीक शब्द :— थर्मस, थ्योरी, प्रोग्राम, फिलासफी, टेलीफोन आदि।

लैटिन भाषा के शब्द :— आपरेटर, कैलेन्डर, डेलीगेट, मिशन आदि।

फ्रेंच भाषा के शब्द :— इंजीनियर, कंट्रोल, टूरिस्ट, टैक्सी, फ़ार्म, ब्लाउज़, लेफ्टिनेंट

जर्मन भाषा के शब्द :— किंडरगार्टन, निकल, फैरनहाइट, होमियोपैथी इत्यादि।

स्पेनिश भाषा के शब्द :— कोको, चाकलेट, टमाटर आदि।

पुर्तगाली भाषा के शब्द :— अनन्नास, अलमारी, कनस्तर, चाबी, तम्बाकू, तौलिया, गमला, गोभी, बाल्टी, संतरा, बोतल, काकातुआ, कमीज़, मेज़, पादरी, काजू, गिरजा, पीपा, इस्त्री, पिस्तौल, फ़ीता, नीलाम, कमरा, फर्मा, टोप, मिश्री, गोदाम, इत्यादि।

डच भाषा के शब्द :— तुरुप, बम (गाड़ी का)

चीनी भाषा के शब्द :— चाय, लूसुन, (लहसुन), लीची, आलूचा, आदि।

जापानी भाषा के शब्द :— हायकू तथा जूडो। इस प्रकार हिन्दी भाषा के

प्रत्येक शब्द से विकास के पीछे एक दीर्घ ऐतिहासिक परम्परा पाई जाती है। शब्दों के जीवन का अध्ययन देश काल, परिस्थिति और संस्कृति के आधार पर ही करना उचित है। ऐतिहासिक युग के अनुसार ही हिन्दी में संस्कृत प्राकृत, अपभ्रंश. देशज भाषा (अनार्य भाषा के शब्द) अरबी, फारसी, पश्तो, अंग्रेज़ी, पुर्तगाली, फ्रेंच, लैटिन, ग्रीक, डच, स्पेनिश, चीनी और जापानी भाषाओं के शब्द प्रवेश पागये हैं।

हिन्दी भाषा में अनेक ऐसे समस्त पद (Compound) हैं जिन में एक विदेशी शब्द या देशज होता है जैसे —

१) सील-मोहर—अंग्रेज़ी के सील (Seal) तथा फ़ारसी के मुहर के योग से यह शब्द बना है। हिन्दी में केवल मोहर के अर्थ में ही इस शब्द का प्रयोग होता है।

(२) खेल-तमाशा – खेल (संस्कृत प्राकृत)। तमाशा (फारसी)। दोनों के योग से बना है। जिस का खेल कूद अर्थ है।

(३) साग-सबजी — यह शब्द भी संस्कृत शब्द शाक (हरी तरकारी)+ फारसी शब्द सब्ज़: दोनों के योग से बना है।

(४) धन-दौलत — यह समस्त पद संस्कृत शब्द धन तथा फारसी शब्द दौलत के योग से बना है जिस का अर्थ है सम्पत्ति।

(५) हाट-बाज़ार— यह समस्त पद देशज शब्द हाट+फारसी शब्द बाज़ार के योग से बना है जिस का अर्थ है—मेला।

(६) झंडा-निशान — देशज शब्द झंडा+फारसी शब्द निशान के मेल से यह समस्त पद बना है जिस का अर्थ है ध्वजा।

(७) कागज-पत्तर यह समस्त पद फारसी तथा संस्कृत पत्र के तद्भव शब्द के योग से बना है जिस का अथ है — कागज़ात।

(८) कपड़े-लत्ते— यह शब्द भी संस्कृत शब्द कर्पट > कापड़ > कपड़े+ देशज शब्द लत्ता के योग से बना है जिस का अर्थ है वस्त्र।

(९) बकसा-पेटी—बक्स (Box) अंग्रेज़ी शब्द तथा पेटी > पेटक संस्कृत शब्द के योग से यह समस्त पद बना है।

(१०) घर-बाड़ी— यह शब्द गृह संस्कृत तथा वाटिका संस्कृत के योग से बना है।

(११) बीवी-बच्चे— यह समस्त पद फारसी शब्द बीवी और संस्कृत के तद्भव (वत्स > बच्छ > बच्च) शब्द के योग से बना है जिस का अर्थ है परिवार।

(१२) जिंदगी-मौत— यह समस्त पद फारसी शब्द जिंदगी और संस्कृत के तद्भव (मृत्यु > मौत) के योग से बना है।

(१३) खान-पान— यह समस्त पद फारसी के शब्द खान तथा संस्कृत के शब्द पान के योग से बना है।

(१४) रोटी-कपड़ा— यह समस्त पद देशज रोटी (बंगला में रुटी) तथा संस्कृत के कर्पट के योग से बना है।

कुछ शब्दों की व्युत्पत्ति तथा अर्थ – परिवर्तन

(१) पाद—पाद शब्द का अर्थ पैर है। इसी के साहश्य के आधार पर पशु के एक पैर का चौथा भाग के लिए भी पाद का व्यवहार होनें लगा आगे चलकर चारपाई के पाये के लिए चतुष्पादिका का प्रयोग हुआ तथा वृक्ष की जड के लिए पादप का प्रयोग हुआ है। छन्द-शास्त्र में पाद का पद अर्थात् चरण रूप में भी प्रयोग मिलता है।

(२) बन्धु—यह शब्द ऋग्वेद में प्रयुक्त हुआ है (ऋग्वेद १/१६४/ ३) यहाँ इसका अर्थ है सम्बन्धी यह √बन्ध् से बना है जिसका अर्थ है बाँधना। डा० सिद्धेश्वर वर्मा इसकी तुलना - भारोपीय शब्द bhend= बाँधना तथा आँग्ल सेकशन शब्द bindan (बाँधना) से करते हैं। आज की हिन्दी में इस शब्द का अर्थ भाई के लिए होता है।

(३) गोष्ठी—वैदिक काल में गायों को बाँधने के लिए बाड़े बनाये जाते थे जिन्हें गोष्ठ कहा जाता था। ऋग्वेद के निगात्रो गोष्ठे असदन्नि अगासो अविक्षत (१/१९१/४) में गोष्ठ शब्द का अर्थ गायों के बैठने का स्थान है। अथर्ववेद में गोष्ठ शब्द का अर्थ पशुओं के रहने का स्थान होगया। बाद में गोष्ठ बाड़े के ही अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। जैसे गोगोष्ठ=गायों का बाड़ा, महिष गोष्ठ=भैसों का बाड़ा आदि पंचतंत्र, हितोपदेश और कथा सरित्सागर में पशुओं की विभिन्न गोष्ठियों का वर्णन है। गोष्ठी शब्द की व्युत्पत्तियाँ भी बदलती

गई। आरम्भ में समानशील या स्वभाव वाले व्यक्तियों की टोली को गोष्ठी कहा गया—समानशील समूहः गोष्ठी। उसके बाद समान विद्या, धन, शील, बुद्धि और आयु वाले लोगों का एक स्थान पर जमा होकर सम्भाषण करना गोष्ठी कहलाया। नाट्यशास्त्र में मनोविनोद, पारस्परिक विचार-विनिमय और ज्ञान-संवर्धन का साधन गोष्ठी माना गया। इसके बाद तो द्यूत-गोष्ठी, मदिरापान गोष्ठी, धूर्त-गोष्ठी इत्यादि के रूप में गोष्ठी का अर्थ-विस्तार होगया। वर्तमान काल में गोष्ठीशब्दसाहित्यिक विचार-विनिमय के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

(४) कार्षापण—पाली कहापन, प्राकृत कहावण तथा बंगला काहन—एक प्रकार का बाँट-एक कार्ष की तोल का सिक्का। यह शब्द दो शब्दों के योग से बना है—कार्ष तथा पण। पहले का मूल कर्ष है जिसका अर्थ है नाप या तोल। कर्ष शब्द हखामनी (Achaemenian) ईरान के राजाओं के युग का है क्योंकि ईरान का भारत की राजनीतिक तथा आर्थिक स्थित पर काफी प्रभावरहा है। पण शब्द आस्ट्रिक कोल भाषा का है। यह शब्द संख्यावाचक है— के अर्थ में अर्थात् एक कार्ष की तोल का सिक्का।

(५) चाय—यह चीनी शब्द है। बारहवीं शताब्दी के अभिलेख में चीन की 'चा' का उल्लेख मिलता है। उस के बाद के अभिलेखों में पता चलता है कि कैसे यह पेय विदेशों में गया। अंग्रेज 'चा' को 'Tcha' लिखते थे। मूर्द्धन्य ध्वनि प्रधान भाषा होने के कारण अंग्रेजी में Tcha का Ch लुप्त हो गया और T प्रमुख होगया इस प्रकार 'Tcha' Tay में बदल गया अन्त में उच्चारण भेद से Tay भी Tea में बदल गया।

(६) अतिथि—न तिथिर्यस्य सो अतिथि: अर्थात् बिना तिथि की सूचना दिये किसी का आना अतिथि है। अतिथि की यह परिभाषाप्रसिद्ध है:—

यस्य न ज्ञायते नाम न च गोत्रं न चस्थिति:।
अकस्माद् गृहमायाति सो अतिथि: प्रोच्यते बुधै:॥

अपरिचित व्यक्ति जिस के गोत्र और स्थिति का कोई ज्ञान नहीं होता और अकस्मात् घर में आजाता है उसे अतिथि कहते हैं। लेकिन 'मार्कण्डेय पुराण' में इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है—अततिः सातत्येन यश्ठति न तिष्ठतीति अतिथि: अर्थात जो लगातार चलता रहता है और

एक स्थान पर अधिक समय नहीं ठहरता है वह अतिथि है। वर्तमान में अतिथि शब्द का अर्थ-विस्तार हुआ है और सूचना देकर निश्चित समय पर आने वाले परिचित व्यक्ति को अतिथि कहा जाता है। अब तो मित्र घर के भाई तथा माता-पिता तक को अतिथि माना जाता है।

(७) अपाहिज— इस शब्द का मूल संस्कृत के 'अपाथेय' शब्द में है:— अपाथेय > अपाहेज्ज > अपाहिज्ज > अपाहिज। इस प्रकार अपाथेय का अर्थ हुआ जो पथ में-यात्रा के अयोग्य हो।

(८) कायस्थ—कायस्थ प्राचीन काल में लेखकों के वर्ग का नाम था। देश में दीवानी अफसर भी इसी जाति के होते थे। प्राचीन फारसी में राजा के लिए खपायथिय (Khshayathiya) शब्द मिलता है। इससे प्राचीन प्राकृत का रूप खायथिय बना होगा जिससे कायस्थ बन सकता है और उससे संस्कृत का कायस्थ रूप बन गया होगा। एक केन्द्रित शासन में अफसरों तथा मंत्रियों के लिए कायस्थ उस युग की ओर संकेत करता है जब उत्तर भारत में ईरानी सभ्यता की प्रमुखता थी।

(९) चन्द्र—इस शब्द का अर्थ है चमकना। डा० सिद्धेश्वर वर्मा इस की तुलना भारोपीय शब्द quand=चमकना से तथा लैटिन शब्द Candeo (मैं चमकता हूं) करते हैं। यह व्युत्पत्ति सारगर्भित प्रतीत होती है।

(१०) उपवास—इस का मूल अर्थ आग के निकट बैठना था। यज्ञ के समय यजमान अग्नि के पास बैठता था। अतः वैदिक काल में अग्नि विद्या की उपासना करने को उपवास कहा जाता था। पुराणों में उपवास की व्यवस्था इस प्रकार है—

उपावृतस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह।
उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोग विवर्जितः

उपवास में आहारादि समस्त भोग-क्रियाओं का त्याग करना आवश्यक माना गया है। वर्तमान काल में तो स्वास्थ्य-सुधार के लिए या भूख हड़ताल के लिए भी उपवास (आहारादि का त्याग) किया जाता है।

(११) ईख या गन्ना—बौद्ध ग्रन्थ महावस्तु में इक्षु-गंड नामक एक शब्द गन्ने के लिए आया है। नव्य आर्य-भारतीय भाषाओं में इक्षु > ईख > आख > ऊख रूप मिलते हैं। गण्ड शब्द देशज है जिससे

गंडेरी या गँडरी रूप बने हैं। अतः दो समानार्थक शब्दों को सम्मिलित रूप से प्रयुक्त किया गया है।

(१२) सपत्न— इस शब्द का मूल अर्थ एक ही स्त्री के लिए झगड़ने वाले दो व्यक्ति हैं क्योंकि स्त्री धन-सम्पत्ति के समान ईर्ष्या की वस्तु थी। बाद में इस शब्द की व्युत्पत्ति हो गई—

'सह पतति एकार्थे' अर्थात् एक ही वस्तु के लिए आपस में झगड़ा करने वाले शत्रु के अर्थ में हो गया।

(१३) कन्या— कन्या शब्द का संस्कृत में अर्थ है— कुमारी अर्थात् अविवाहित यह शब्द √कन् धातु से निकला है जिसका अर्थ है चमकना लेकिन इस भारोपीय शब्द का अर्थ—परिवर्तन होता गया है। भारोपीय शब्द Ken का अर्थ है ताज़ा निकलना तथा लेटिन शब्द Recens अर्थ है नई। इस प्रकार कन्या का अर्थ हुआ कुँवारी (vergin) जो ताज़ा तथा नये दोनों अर्थों को समेट लेती है।

(१४) कृष्ण—यह शब्द √कृष् धातु से बना है जिसका अर्थ है घसीटना या खींचना। यह शब्द निकृष्ट का समानार्थक है क्योंकि काला रंग निकृष्टतम समझा जाता था। इस शब्द की परम्परा भारोपीय शब्द qrs (कालारंग) तक तथा प्रशियन शब्द Kirsnan (काला) तक माननी होगी।

(१५) कंचुकी या चोली— संस्कृत के शब्द कंचूल, कंचूलिका हैं। कंचूल या कंचुकी स्तनों के ऊपर बाँधे जाने वाले वस्त्र के अर्थ में हैं। लेकिन चोलिका-पट्ट का अर्थ है— कमर के लिए प्रयुक्त वस्त्र। कंचूल कन् + चोलिका इन दो शब्दों के मेल से बना है। कन् आस्ट्रिक शब्द है जिसका बंगला में कानि=चीथड़ा है। मालय (मलयालम) मे काइन =कपड़ा था चोल शब्द=कपड़ा है अतः कंचुकी की व्युत्पत्ति हुई कन्+चोल+क+इ=स्तनो तथा मध्य भाग का कपड़ा। लेकिन यह केवल स्तनों को ढकने वाले वस्त्र के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार चोली शब्द का प्रयोग मध्य भाग के कपड़े के लिए न हो कर केवल स्तनों को ढकने वाले कपड़े के अर्थ के लिए होता है।

(१६) मण्डप—इस शब्द की व्युत्पत्ति 'मडि भूषायाम्' और 'मन् ज्ञाने' धातुओं से है। आरम्भ में इसका अर्थ स्थान विशेष था। जिस

सुसज्जित स्थान पर ऋषि-मुनि स्फूर्ति के लिए 'मंड पिया करते थे उस स्थान को मण्डंपिबतीति मण्डपः कहा जाता था। यास्क ने 'मण्डूक' शब्द की व्युत्पत्ति की है—मण्ड एषामोकः अर्थात् गन्दा जल ही जिनका निवास है। चावल उबालने पर जो जल निकाला जाता है उसे माण्ड इसीलिए कहते हैं। यज्ञ में सोमरस के साथ मण्ड पीने की प्रथा होगी। मण्डपान की प्रथा के समापन के बाद भी उत्सवों में बैठने के लिए सुसज्जित स्थान को मण्डप कहा जाने लगा। 'मडिभूषायाम्' से शोभाजनक या शोभा रक्षक स्थान को मण्डप कहा जायगा। जैसे —

मण्डनं मण्डः, मण्डं पाति रक्षतीति मण्डपः। अतः मण्ड पीने के सुसज्जित स्थान से अब इसका अर्थ-विकास होता हुआ उत्सव के लिए सुसज्जित स्थान हो गया है।

(१७) आँय बाँय साँय—इस की व्युत्पत्ति अनुकरणात्मक मानी गई है लेकिन वस्तुतः यह संस्कृत के 'आतिपात्य शान्ति से बना हुआ तद्भव रूप है। जैन ग्रन्थों में इसका प्रयोग नित्य जीवन में अनजाने होने वाली हिंसा के लिए हुआ है। अपभ्रंश में 'आइ बाइ साइ, और हिन्दी में 'आँय बायँ सायँ' हो गया।

(१८) प्रतिष्ठा—यह शब्द स्था धातु से बना है जिसका अर्थ है— स्थित होना। ऋग्वेद के साकं प्रतिष्ठा हृद्या जघन्थ (१०/७/६) में शरीर के अर्थ में प्रतिष्ठा शब्द का व्यवहार हुआ है। देवी पुराण में 'यस्य देवस्य यः कालः प्रतिष्ठाध्वजरोपणे' द्वारा शब्द का प्रयोग देव-मूर्ति की स्थापना के अर्थ में हुआ है। कथासरित्सागर के 'किंच व्याकरणं लोके प्रतिष्ठां प्रापयिष्यति' (२/६९) में प्रयोग गौरव के अर्थ में हुआ है। आज भी इस शब्द का प्रयोग गौरव तथा सम्मान के अर्थ में होता है।

(१९) ढिंढोरा – इस शब्द की व्युत्पत्ति अनुकरणात्मक ढम+ढोल के मानी जाती है लेकिन वस्तुतः यह संस्कृत शब्द 'डिंडम पटह' से व्युत्पन्न है :—

डिंडम पटह > डिंडिवँवडअ > डिंडिउरा > डिंडउरा > डिंडोरा > ढिंढोरा।

(२०) कमेरा— हिन्दी में यह शब्द अनसीखे मजदूरों के लिए आता है। यह शब्द कर्मकर से बना है :—

कर्मकर > कम्महर > कम्यहर > कमेरा

इसी प्रकार चर्मकार से > चमार, स्वर्णकार से > सुनार इत्यादि शब्द बनते हैं।

(२१) रीछ या भालू— संस्कृत के ऋक्ष शब्द से रीछ बना है। भालू के लिए अच्छभल्ल अच्छा या सीधा भालू का प्रयोग भी होता रहा है क्योंकि प्रायः बुरे या भयंकर जानवरों का सिर्फ नाम लेना ठीक नहीं समझा जा। वैसे अच्छ शब्द ऋक्ष का भी तद्भव हो जाता है। भल्ल का देशज रूप भला (अच्छा) भी मिलता है। बंगला में भालुक या भाल्लुक शब्द मिलता है उसी का रूप भालु > भालू बन गया है।

(२२) अन्न— यह शब्द संस्कृत की —अद् धातु से बना है जिसका अर्थ है खाना। इस शब्द की तुलना यूनानी शब्द 'Edomai' (मैं खाता हूँ) से की जा सकती है।

हिन्दी प्रत्ययों की व्युत्पत्ति तथा विकास का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन

हिन्दी में जो कृदंत तथा तद्धित प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं वे यौगिक न होकर रूढ़ होगये हैं। हिन्दी में संस्कृत के समान कृत प्रत्यय नहीं होता बल्कि हिन्दी कृदन्त के रूप में किसी संज्ञा या विशेषण में धातु का अर्थ द्योतित होता है। तद्धित प्रत्यय तथा कृदन्त दोनों का विकास प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं से हुआ है।

(१) अ— भाववाचक संज्ञा की रचना अ प्रत्यय के योग से होती है। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत पुल्लिंग अः से हुई है। संस्कृत में जब स्त्रीलिंग बनाना होता है तो आ और नपुंसक लिङ्ग बनाना होता है अं रूप होजाते हैं। इस प्रत्यय को अकरान्त धातुओं में जोड़ा जाता है।

(क) संज्ञारूप :— देख से देखना, समझ से समझना, इत्यादि

(ख) विशेषण :— घटना से घट, मरना से मर इत्यादि

(ग) पूर्वकालिक :— देखना से देख, मरना से मर इत्यादि

ब्रज, अवधी तथा भोजपुरी भाषाओं में पूर्वकालिक कृदन्त प्रत्यय रूप का इकारान्त होता है जैसे — देखना से देखि, पढ़ना से पढ़ि इत्यादि

(२) अक्कड़ (क्कड़) — इसकी व्युत्पत्ति प्राकृत अक्कर + र > अक्कड़ > अक्कड़ से है। जैसे — पीना से पियक्कड़, भूलना से भूलक्कड़

(३) अन्त — इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत कृदन्त (शतृ) से मानी गई है। जैसे — रटना से रटन्त

घनेघोर गज्जंत वर्षन्त पानी
तहाँ बाल झूलन्त गायन्त झानी
—जोधराज

गढ़ना से गढ़न्त
भिड़ना से भिड़न्त
लड़ना से लड़न्त

(४) आ — इसकी व्युत्पत्ति प्राचीन भारतीय आर्यभाषा संस्कृत त, इत > प्राकृत, अपभ्रंश अ, इअ+स्वार्थे आ से हुई है :—

संस्कृत गतः > प्राकृत गग्र > अपभ्रंश > गग्रा > हिन्दी गया।
संस्कृत कृतः > प्राकृत किग्र > ग्रपभ्रंश > किग्रा > हिन्दी किया।

जैसे जैसे भाषा विकास होता गया वैसे वैसे ग्रपभ्रंश का इग्रा प्रत्यय इ के लोप होजाने से ग्रा बन गया है। जैसे—

चलति > चलित चलिद > चलिउ > चल्यु (व्रज) > पुरानी हिन्दी चल्या > ग्राधुनिक हिन्दी चला।

(५) ग्राई— इसकी व्युत्पत्ति प्राचीन भारतीय ग्रार्य भाषा णिजन्त से मानी गयी है।

प्राकृत भारतीय ग्रार्यभाषाणिजन्त ग्राय+इका > ग्राविग्रा, ग्राविग्र ग्रावी > ग्राई। जैसे :—

कर्म+ग्रापणिजन्त > संस्कृत कर्मापयति > प्रा० कम्मावइ > हिन्दी कमाना से कमाई।

गढ़ (ना)	से	गढ़ाई
चर (ना)	,,	चराई
जाँच (ना)	,,	जँचाई < याच् < याचापिका
पढ़ (ना)	,,	पढ़ाई < पढ़ < पठ

(६) ग्राप— इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के 'ग्रात्मन' शब्द से हुई है :—

ग्रात्मन् > प्राकृत ग्रप्प या ग्राप्प > हिन्दी ग्राप हिन्दी— मिलना से मिलाप < प्राकृत मिलइ < संस्कृग्र मिलति।

(७) ग्रास— भाववाचक संज्ञा बनाने वाले इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत ग्राप+वश से हुई है :—

पीना से प्यास। रोना से रुग्राँस

(८) ग्राव—ग्रावा —इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के त्व से हुई :

संस्कृत त्व, त्वन > प्राकृत तं तण > ग्रग्र, ग्रग्रणं > ग्रपभ्रंश ग्रउ या ग्रग्रणु > हिन्दी ग्राउ या ग्राव—ग्रावा। उदाहरणार्थ—संस्कृत उच्चकत्वं > प्राकृत उच्चग्रत्तं या उच्चग्रग्रं > ग्रपभ्रंश उच्चग्राउ > हिन्दी उँचाव

(९) ग्रावना— इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के ग्राप+न्+ग्रा से है :—

हिन्दी-सुहाना से सुहावना < प्राकृत सोह < संस्कृत शोभ लुभाना से लुभावना

(१०) आहट—इसकी व्युत्पत्ति प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के धा > हा > आहा + आवट से हुई है :—

चिल्लाना से चिल्लाहट
घबराना से घबराहट
खनखनाना से खनखनाहट

(११) इयल—इसकी व्युत्पत्ति इक + स्वार्थे ल से हुई है :—

अड़ना से अड़ियल
मरना से मरियल
सड़ना से सड़ियल

(१२) इया—संस्कृत इत > प्रा० इय > हिं० इया से इसकी व्युत्पत्ति हुई है।

हिन्दी बढ़ना से बढ़िया < अपभ्रंश बड्ढ < प्राकृत वड्ढ < संस्कृत वर्ध।

(१३) ऊ—इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत उक > मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा उअ से हुई है। जैसे :—

हिन्दी खाना से खाऊ < संस्कृत खादद् + उक

(१४) एरा—इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत कर (अ) < य--अर > एर (+ आ) से हुई है। जैसे—

कमाना से कमेरा
लूटना से लुटेरा

(१५) औना—इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत अनीय < प्राकृत अणीअ > अणिअ > अणअ से हुई है। जैसे—

खेलना से खिलौना
बिछाना से बिछौना

(१६) क, अक, इक—इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के अक तथा मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा के अक्क से हुई है। जैसे—

हिन्दी बैठना से बैठक < मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा बइट्ठ < संस्कृत उपविष्ट।

हिन्दी फाड़ना से फाटक < प्राकृत फट्टइ < संस्कृत स्फाटयति। हिन्दी चमकना से चमक < प्राकृत चमक्क, चमककग्र < संस्कृत चमत्कृत ।

(१७) त— इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत त्व > मध्यकालीन आर्यभाषा के न्त से हुई है। जैसे –

बचना	से	बचत
रँगना	से	रंगत

(१८) ता— इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत अत् > प्राकृत अंत् से है। जैसे—

देखना	से	देखता
आना	से	आता
गाना	से	गाता

(१९) न— इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत अन् से हुई है। जैसे—

झाड़ना	से	झाड़न
कहना	,,	कहन
खाना-पीना	,,	खान-पान

(२०) ना— इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत अन् से हुई है। यहाँ धातु का निर्देश हो गया है। जैसे—

बोल (ना)	से	बोलना
लिख (ना)	,,	लिखना

(२१) नी— इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत अनीय > प्राकृत अणीय > हिन्दी नी से हुई है। जैसे—

करना	से	करनी
कटना	,,	कटनी
चाटना	,,	चटनी
कहना	,,	कहानी

(२२) वाँ— इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत व (न) त प्रत्यय से हुई है। जैसे—

ढालना	से	ढलवाँ

(२३) वाला— इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत पालक से हुई है। जैसे—

रोकना	से	रोकने वाला

जाना	से	जाने वाला
रोना	से	रोने वाला

(२४) वैया— इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत तव्व+इ > प्राकृत एअव्वं, इअव्वं से हुई है। जैसे—

गाना	से	गवैया
देना	,,	दिवैया

(२५) हार - इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के धारक से हुई है। जैसे—

मारना	से	मरनहार
होना	से	होनहार

हिन्दी कारकों की व्युत्पत्ति तथा विकास

प्रमुख रूप से हिन्दी भाषा वियोगात्मक रूप में ही विकसित हुई है लेकिन यह रूप प्राचीन भारतीय भाषा में नहीं दिखाई देता। अपभ्रंश में थोड़ा वियोगात्मक रूप दिखाई देता है तथा हिन्दी में खुलकर कारक चिह्न प्रयुक्त होने लगे हैं। इस प्रकार संयोगात्मक भाषा संस्कृत के स्थान पर उसी से विकसित भाषा हिन्दी वियोगात्मक हो गई है। इस रूप में फिर भी हिन्दी विभक्ति प्रधान भाषा है। हिन्दी भाषा में कारकों की संख्या संस्कृत के समान ही आठ है। संस्कृत में प्रत्येक विभक्ति को तीन वचनों में अर्थात् एकवचन द्विवचन तथा बहुवचन में रूपायित किया जाता है। हिन्दी में द्विवचन नहीं होता। हिन्दी के वर्तमान रूप की अपेक्षा ब्रजभाषा तथा अवधी में कुछ संयोगात्मक रूप अवश्य दिखाई देते हैं। हिन्दी के वर्तमान रूप में बहुत कम विभक्ति रहित रूप होते हैं जहाँ परसर्ग की आवश्यकता नहीं। कुछ संयोगात्मक कारक रूपों के उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(१) कर्ताकारक— १. मोहन पुस्तक पढ़ता है। (वर्तमान हिन्दी)
२. तब मारीचि प्रगट मृग भयऊ।
३. अहिर गोरूबाग मेलव (उक्ति०)
४. भोजत करत बोल तब राजा (मानस)

बहुवचन— १. लड़के पुस्तकें पढ़ते हैं।
२. चले वेग वर वाजि लजाए (मानस)
३. महुअर बुझ्झइ कुसुम रस (कीर्तिलता)

(२) कर्मकारक— १. राम पुस्तक पढ़ता है।
२. भरत दुखित परिवारु निहारा (मानस)
३. सिंघासण मोल्हिउ वइसणइ (शालिग्रामचक्र)

बहुवचन— १. मोहन ने अनेक ग्रन्थ पढ़े हैं।
२. तार हिचकीन के तनक टरि लेनदेहु (उद्धव शतक)
३. वह्मण इं पर निवतेसु (उक्त०)
४. सर पर नहीं अधर पर रखलूँ ऐसे चरण नहीं मिलते हैं। (रामावतार त्यागी)

(३) करणकारक— एकवचन

१. मोहन इस मार्ग नगर को गया है।

२. नैकु कही बैननि (उद्धवशतक)

३. महुअर सद मानस मोहिआ (कीर्तिलता)

बहुवचन— १ लड़के इन्हीं रास्तों नगर चले गये हैं।

२ वे इन्हीं भेषों छले गये हैं।

३. भूलें न मुझको नाथ मैं हूं विधिविहित अर्द्धांगिनी।

(४) सम्प्रदान— हिन्दी सम्प्रदान कारक में निर्विभक्तिक रूप बहुत कम देखने को मिलते हैं, फिर भी दो एक उदाहरण यहाँ उद्धृत हैं—

१; पर उपदेश कुशल बहुतेरे (मानस)

२. वेद नखत ग्रह जोरि अरध करि

३. सिंघासण मेल्हिउं वइसणइ (बैठने के लिए सिंहासन दिया) [डा० चड०]

(५) अपादान— हिन्दी के इस कारक में कोई निर्विभक्तिक रूप नहीं होता।

(६) सम्बन्ध कारक—

१. करनं चहहुं रघुपति गुनगाथा। (मानस)

२. सुरराय नयर नाअर रमनि (कीर्तिलता)

३. प्रजा सहेली तासुरिपु

(७) अधिकरण कारक—

१. बड़े भाग उर आवइ जासू। (मानस)

२. इनके घर बस यही रीति है।

३. इनके कुल ऐसी चलि आई। (मानस)

४. पारस रूप इहाँ लगि आई जायसी)

सविभक्तिक रूप अथवा परसर्ग वाला रूप— अपभ्रंश के मुख्य परसर्ग थे— कर, उ, मज्झ, उप्परि, केहि, तण, लागि, होन्तऊ और सहुँ। इन्हीं के विकसित रूप आधुनिक हिन्दी में हैं—करके, में, ऊपर, पर, को, का के तथा लिए। हिन्दी में कर्ताकारक का परसर्ग 'ने, है।

१. कर्ताकारक— हिन्दी का 'ने' विभक्ति प्रत्यय वास्तव में संस्कृत की तृतीया विभक्ति (करणकारक) के 'एण' प्रत्यय का रूपान्तर है लेकिन इसका प्रयोग

साधन के रूप में नहीं होता। कुछ विद्वानों ने इस 'ने' की व्युत्पत्ति 'इन' प्रत्यय से मानी है। किशोरीदास बाजपेयी का यही मत है। अपभ्रंश में सर्वनाम रूपों के साथ ही यह 'ने' का प्रयोग दिखाई देता है संज्ञा शब्द के साथ कहीं नहीं मिलता। जैसे:

(१) जेन्हें साहस करिअ रण छप्प (कीर्तिलता)
(२) जेन्ने जाचक जन रंजिअ (,,)

हिन्दी में संज्ञा शब्द के साथ भी यह 'ने' परसर्ग लगता है। वाक्य में जब सकर्मक भूतकालिक क्रियाओं का प्रयोग होता है तो संज्ञा और सर्वनाम के बाद इस 'ने' का प्रयोग होता है। जैसे—

(१) लड़के ने खाया।
(२) उसने कमरा साफ किया।

२. कर्मकारक— अपभ्रंश, अवधी तथा ब्रजभाषा में 'न्हि या 'न्ह' परसर्ग का प्रयोग मिलता है:—

(१) गुरु सीसन्ह ताड़ (उक्ति०)
(२) सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही (मानस)

अवधी के 'कहुँ या 'कहुँ' परसर्ग भी कर्मकारक के रूप में मिलते हैं जैसे—

(१) तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू। (मानस)
(२) पहुंच न सके सरग कहँ गए (पद्मावत)

यही अवधी का रूप काँ, कौं, कूँ, और को बन जाता है—

(१) मेरा मन सुमिरै राम कूँ, । (कबीर)
(२) करौं भरोसो का को। (गीतावली)
(३) कह्यो तिय को जिनकान कियो है (कवितावली)

आधुनिक हिन्दी में कर्मकारक का परसर्ग 'को' ही व्यवहृत होता है जैसे—

(१) सुग्रीव को भी साथ ले कर जायेंगे बन्दर सभी (रामचन्द्रवर्मा)
(२) गुलदस्ते को लिए हंसी भी
भागी खुशबू छोड़ गई। (ये आस्था ये अंधेरा मयूब प्रेमी)

३. करण कारक— करण कारक का सहुं संस्कृत के सह से विकसित हुआ है। इस परसर्ग का विकास ऐसे हुआ है—

संस्कृत सह > प्राकृत सहुँ > अपभ्रंश सओं > ब्रज अवधी सों सन > हिन्दी (आधुनिक) से उदाहरण:—

(१) प्राकृत- जइ पवसन्ते सहुँ न गय (हेम० ४/४१८)
(२) अपभ्रंश मृत्यु सओ कलकल करइतें अछ (वर्ण०)
(३) ब्रज कर सों पर पलुटावति (सूरदास)
(४) अवधी सो मो सन कहि जात न कैसे (मानस)
(५) आधुनिक हिन्दी उसने मोहन से मारपीट की

४. सम्प्रदान कारक— सम्प्रदान कारक का परसर्ग 'लिए' या 'के लिए' है। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के शब्द लग्न से है—

संस्कृत लग्न > प्राकृत लग्ग > अपभ्रंश लागि > अवधी लागि > आधुनिक हिन्दी 'लिए'। जैसे—

(१) तेसरा लागि तीनों उपेक्खिअ (कीर्तिलता)
(२) छन सुख लागि जनम सत कोटी (मानस)
(३) तेरे लिए खिलौना लाया हूँ।

५. अपादान कारक— इसका परसर्ग 'से' है। ब्रजभाषा सो या तें का प्रयोग होता है जो तः का ही रूपान्तर है जैसे आकाशतः (आकाश से) ब्रजभाषा में — आसमान तें गिरौ और खजूर में अटक्यौ" जैसी उक्ति का प्रयोग होता है। खड़ी बोली या आधुनिक हिन्दी में 'से' का प्रयोग होता है:—

(१) वह घर से निकला।
(२) वृक्ष से फल गिरता है।

(६) सम्बन्ध कारक: आधुनिक हिन्दी के सम्बन्ध कारक के परसर्ग 'का 'की' 'के' का सम्बन्ध अपभ्रंश के क, कई और 'केर' से है:—

(१) शक्ति क परीक्षा (कीर्तिलता)
(२) पितु आयसु सब धरम क टीका (मानस)
(३) सिर नवइ सब्ब कइ (कीर्तिलता)
(४) जसु केरअ हुंकारडएँ (हेमचन्द्र)
(५) परहित हानि लाभ जिन्ह केरे (मानस)
(६) राम ने सीता की अग्नि-परीक्षा ली।

७. अधिकरण कारक— आधुनिक हिन्दी में अधिकरण कारक का परसर्ग में संस्कृत के मध्य से विकसित हुआ है—

सं० मध्ये > अप० मज्झे या माँझ > पुरानी अवधी तथा ब्रज माँह

मँह > आधुनिक हिन्दी में। पर तथा पै का विकास संस्कृत के 'उपरि' शब्द से हुआ है जैसे—

सं० उपरि > प्राकृत उप्परि > ब्रज तथा अवधी पै या पर > आधुनिक हिन्दी पर। उदाहरण—

(१) जामहिं विसमी कज्ज गति जीवहिं मज्झे एइ (हेमचन्द्र)
(२) माँझ मँदिर जनु लाग अकासा (पद्मावत)
(३) मन महँ तर्क करै कपि लागा (मानस)
(४) ज्यों जलमाँह तेल की गागर (सूरदास)
(५) सायर उप्परि तणु धरइ (हेमचन्द्र)
(६) हम पै कोप कुपावति. सूरदास)
(७) आपुन पौढ़ि अधर सेज्यापर (सूरदास)
(८) मधुर गीत के मर जाने पर, धुँधला दर्पण किए हुए हैं।
(अयूब 'प्रेमी' पीले चाँद के शहर में)

इस प्रकार अपभ्रंश से आधुनिक हिन्दी तक परसर्गों के इस विकास को देखकर यह सिद्ध हो जाता है कि विभिन्न स्थितिओं में उनके अवशेष मिल जाते हैं। इसी क्रम में भारतीय आर्यभाषाओं में संयोगात्मकता की जगह पर यह वियोगामकत्कः रूप लेता गया है।

हिन्दी सर्वनामों की व्युत्पत्ति तथा विकास

१. उत्तम पुरुष :—

(१) मैं— संस्कृत मया > अपभ्रंश > मइँ > हिन्दी मैं।

इस उत्तम पुरुष एकवचन सर्वनाम का संस्कृत के अहं से कोई सम्बन्ध नहीं है।

उदाहरण :—

(१) ढोल्ला मइँ तुहुँ वारिया (हेमचन्द)

(२) सीता गई तुम भी चले मैं भी
न जीऊँगा कभी (रामचन्द्र वर्मा)

(२) हम— इसकी व्युत्पत्ति प्राकृत के हमं से है जो अपभ्रंश में 'अम्हें' का रूप धारण करता है —

संस्कृत अस्मै > प्राकृत हमं > अम्हे > हम्ह > हम्म > हम

इस उत्तम पुरुष बहुवचन का विकास ध्वनि परिवर्तन के नियमों के अनुसार ही हुआ है—

(१) अम्हे थोवा रिउ बहुत (हेमचन्द)

(२) हम जो कहा यह कपि नहिं होई। (मानस)

(३) मुझ या मुझे— इसका सम्बन्ध षष्ठी कारक के प्राकृत रूप मह के स्थान पर संस्कृत के मह्यं से है— संस्कृत मह्यं > प्राकृत मह्यं > अपभ्रंश मज्झं > मुझ

(१) सो प्रिय होइ न मुझ (हेमचन्द्र)

(२) मुझ में रही न हूँ। (कबीर)

(४) मेरा— इसका सम्बन्ध प्राकृत प्रत्ययों केरी, केरा से है। षष्ठी के इस रूप को विशेषण भी माना जाता है।

प्राकृत महकेरो > महकरो > हिन्दी म्हारो > मारो > मेरा

(१) मेरा मुझ में कुछ नहीं। (कबीर)

(२) यदि तुम नहीं तो कुछ नहीं मेरा रहा संसार में (रामचन्द्र वर्मा)

(५) हमारा— इसका सम्बन्ध प्राकृत के अम्ह से है। इसमें करको प्रत्यय लगाकर बनाया गया है—

अम्ह करको > अम्ह अरओ > अम्हारो > महारो > हमारो > हमारा।

(१) भला हुआजुमारिआबहिण म्हारा कंतु (हेमचन्द्र)

(३) भूले हुए को पथ दिखाना यह हमारा कार्य था। (भारत भारती)

(६) मेरा या मोर— अवधी तथा ब्रजभाषा में इसका प्रयोग होता है। इस की व्युत्पत्ति प्राकृत तथा अपभ्रंश के मोकर > मोअर से है—

मोकर > मोअर > मोर।

उदाहरण—

(१) मोअर वअन आकण्णो करहु (कीर्तिलता)

(२) होइ दोसु, नहिं मोरा। (मानस)

(३) जीवन धन मोर। (सूरदास)

२. मध्यम पुरुष :—

(१) तुम— अपभ्रंश में तुम के लिए 'तुम्हे' का प्रयोग होता था—
युष्मे > तुम्हे > तुम्ह > तुम

उदाहरण—

(१) तुम्हेहिं अम्हेहिं जं कियउँ : (हेमचन्द्र)

(२) की तुम्ह हरिदासन महँ कोई। (मानस)

(३) नारी तुम केवल श्रद्धा हो। (कामायनी

(२) तू— इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—
अपभ्रंश तुहं > तुउँ > तूँ > तू

उदाहरण :—

(१) मइँ भणिय तुहुँ (हेमचन्द्र)

(२) तूँ माय के मूड़ चढ़ै कित मोड़ी (रसखान)

(३) तू है कौन मेरा बतला दे। (मैथिली शरण गुप्त)

३. तुम्हारा— प्राकृत के तुम्ह+कर को (प्रत्यय) से इसका सम्बन्ध है—
प्राकृत तुम्ह+करको > अपभ्रंश तुम्ह अरओ > तुम्हारो > तुम्हारो > तुम्हारा।

उदाहरण—

(१) अहो पितरहो को तुम्ह तारहि (उक्ति व्यक्ति)

(२) तुम्हारी शपथ मैं तुम्हारा नहीं हूं बलवीर सिंह रंग)

(४) तुझे या तुझ— इसका सम्बन्ध संस्कृत के तुभ्यं से है—

संस्कृत तुभ्यं > प्राकृत तुह > अपभ्रंश तुज्झ हिन्दी तुझे।

उदाहरण :—

(१) तुझ दिअउँ जिअदान। (कीर्तिलता)

(२) तुझे मैं अच्छा सबक दूँगा।

३. अन्य पुरुष सर्वनाम :—

(१) वह— यह निश्चय वाचक सर्वनाम वैदिक 'ओ' से उत्पन्न है। अपभ्रंश में ओ मिलता है।

उदाहरण —

(१) ओपरमेसर हर सिर सोहइ (कीतिलता)

(२) वह मथुरा काजर की कोठरि (सूरदास)

(२) यह— इस की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'एष' से है।

एष > अपभ्रंश एह > हिन्दी यह

उदाहरण :—

(१) एह कुमारी एहो नर (हेमचन्द्र)

(२) यह मेरा भाई है।

(३) मैं जो कहा यह कपि नहीं होई (मानस)

(३) ये—इसका सम्बन्ध 'एतस्य' से है तथा इनका सम्बन्ध अपभ्रंश के 'एन्ह' से हैं। ये के अपभ्रंश में जे 'का' प्रयोग मिलता है। जैसे—

(१) अरु धागड़ कटू कहिं लटक वड जे दिसि धाड़े जाथि (कीर्तिलता)

(२) ये बतियाँ सुनि रूखीं (सूरदास)

४. सम्बन्ध वाचक सर्वनाम।—

(१) जो— इसका सम्बन्ध संस्कृत के 'यः' से है। संस्कृत यः > अपभ्रंश जो > हिन्दी जो—

उदाहरणः—

(१) जो गुण गोवइ अप्पणा (हेमचन्द्र)
(२) सूर श्याम को जो जब भावै (सूरदास)
(३) जो कुछ हो रहा तुम्हें मालूम है।

कहीं कहीं 'जो' के स्थान पर 'जइ' का भी प्रयोग अपभ्रंश में मिलता है—

(१) जइ दीहो विग्र वण्णे (गाहा ८)
(२) राजा जइ कोउ होउ (उक्ति व्यक्ति)

इसी प्रकार जिसका सम्बन्ध 'यस्य' से है जो प्राकृत में जिस्य हो गया और हिन्दी में 'जिस' जिन शब्द संस्कृत के षष्टी बहुवचन 'यानाम' से व्युत्पन्न इन्हीं दिनों के बहुवचन 'जिसे' और 'जिन्हें' रूप हिन्दी में विकसित हुए है। 'जिन' का सम्बन्ध संस्कृत के येनाम (येषाम) से है।

(२) सो— इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के 'सः' से है—

संस्कृत सः > प्राकृत सो > हिन्दी सो।

उदाहरण :—

(१) लहु जीहा पढइ होइ सो विलहु (गाहा ८)
(२) सो कासी सेइय कस न (मानस)
(३) सो मोसन कहिजात न कैसे (मानस)
(४) जो बोयेगा सो काटेगा।

तिस का सम्बन्ध संस्कृत के तस्य > प्राकृत तस्स से है। तिन का विकास संस्कृत के तानां (तेषां) > प्राकृत के तेणं से हुआ है।

५. प्रश्नवाचक सर्वनाम :—

(१) कौन— इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

संस्कृत कः > प्राकृत कवण > अपभ्रंश कवण या कवण > हिन्दी कवन या कौन।

उदाहरण :—

(१) तहि पराई कवण घृण (हेमचन्द्र)
(२) कारण कवन भरतुवन जाहीं (मानस)
(३) निर्गुन कौन देस को वासी (सूरदास)
(४) कौन कौन तुम परिहत वसना (मु० न० पंत)

(२) क्या— इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के 'किं' से है—

संस्कृत किं > अपभ्रंश किनि > किथि > क्या (हिन्दी)

उदाहरण :—

(१) विन्ध सजो विधाताञें किनि काढल (कीर्तिलता)

(२) कैसे हो क्या हो इस का तो भार
विचार न सह सकता (कामायनी)

'किस' का संबन्ध संस्कृत के कस्य तथा प्राकृत के कस्स से है। हिन्दी 'किन' की उत्पत्ति संस्कृत 'कानां' (केषां) प्राकृत 'केणां) से है।

६. अनिश्चय वाचक सर्वनाम :—

(१) कोई— इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के 'कोऽपि' से है—

संस्कृत कोऽपि > पाली कोपि > प्राकृत कोवि > कोई (हिन्दी)

उदाहरण :—

(१) देहु म मग्गहु कोई (हेमचन्द)

(२) सुनि आचरज करै जनि कोई (मानस)

(२) कुछ— इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के कश्चिद् से है। संस्कृत कश्चिद् > अपभ्रंश किछु > हिन्दी कुछ

उदाहरण :—

(१) बोलिए न जाय किछु धाम (कीर्तिलता)

(२) अब किछु कहा न जाय (कबीर)

(३) अविगत गति कछु कहत न आवै। (सूरदास)

(४) यदि तुम नहीं तो कुछ नहीं
मेरा रहा संसार में (रामचन्द्र वर्मा)

'किसी' का सम्बन्ध 'कस्यापि' से है।

७. निजवाचक सर्वनाम :—

अपना— इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

संस्कृत आत्मन् > प्राकृत अप्पन > अपभ्रंश अप्पराउँ या अप्पना > पु० हिन्दी आप्पण > आधुनिक हिन्दी अपना

उदाहरण :—

(१) जो गुण गोवइ अप्पणा (हेमचन्द्र)

(२) फोडेन्ति जे हिग्रडउँ ग्रप्पणउँ (हेमचन्द्र)
(३) पीउ ग्रापणें कारणें (कबीर)
(४) यह ग्रपना है संसार है नया (ग्रयूब प्रेमी)

ग्रागे चलकर 'ग्राप' शब्द का प्रयोग हिन्दी में मध्यम पुरुष में होने लगा जैसे —

ग्राप क्यों नाराज हैं ?

विशेषणों के समान प्रयुक्त होने वाले सर्वनाम :—

इन सर्वनामों के दो रूप हैं— परिमाण वाचक तथा गुण वाचक। परिमाण वाचक। परिमाणवाच इतना, उतना कितना जितना या जित्ता-तित्ता रूपों का विकास संस्कृत के इयत् कियत्, प्राकृत के ऐत्तिब, केत्तिय से हुग्रा है।

गुणवाचक सर्वनाम, कैसा, ऐसा, वैसा, जैसा, तैसा का सम्बन्ध कीदृश, यादृश, तादृश से है।

(१) परिमाण वाचक—

उदाहरण—

(१) एतैं कालैं एतिवार (उक्ति व्यक्ति)
(२) ग्रंमह एत्ता दुक्ख मुनि (कीर्तिलता)
(३) ऊधो इतनी कहियो जाय (सूरदास)
(४) वह इतना चालाक है।

गुण वाचक—

उदाहरण :—

(१) ग्रइस पर्व एक चोड (कीर्तिलता ४/ २२/१२३)
(२) कैसे कहा करत (उक्ति व्यक्ति ३२/१)
(३) सो कासी सेइय कसन (मानस)
(४) यह कैसा ग्रादमी है ?

हिन्दी के संख्यावाचक विशेषणों की व्युत्पत्ति

पूर्णांक बोधक विशेषण :—

(१) एक— संस्कृत एकं या एकः > प्राकृत एक्क > अपभ्रंश एक्का > हिन्दी एक।

(२) दो— संस्कृत द्वौ > प्राकृत दो > हिन्दी दो

(३) तीन— तीन— संस्कृत त्रीणि > प्राकृत तिण्णि > हिन्दी तीन

(४) चार— संस्कृत चत्वारि > प्राकृत चत्तारि > हिन्दी चार

(५) पाँच— संस्कृत पंच > प्राकृत पंच > हिन्दी पाँच।

(६) छः— संस्कृत षट् > प्राकृत छः > हिन्दी छः

(७) सात— संस्कृत सप्त > प्राकृत सत्त > हिन्दी सात

(८) आठ— संस्कृत अष्ट > प्राकृत अट्ठ > आठ (हिन्दी)

(९ नौ— संस्कृत नव > प्राकृत नअ > नौ (हिन्दी)

(१०) दस— संस्कृत दश > प्राकृत दस > हिन्दी दस

(११) बीस— संस्कृत विंशति > प्राकृत वीसइ > हिन्दी बीस

(१२) तीस— संस्कृत त्रिंशत् > प्राकृत तीसा > हिन्दी तीस

(१३) चालीस — संस्कृत चत्वारिंशत > प्राकृत चत्तालीस > हिन्दी चालीसा

(१४) पचास— संस्कृत पंचाशत > प्राकृत पंचासा > हिन्दी पचास

(१५) साठ— संस्कृत षष्टि > प्राकृत सट्ठि > हिन्दी साठ

(१६) सत्तर मंस्कृत सप्तति > प्राकृत सत्तरि > हिन्दी सत्तर

(१७) अस्सी— संस्कृत अशीति > प्राकृत असीइ > हिन्दी अस्सी

(१८) नव्वे— संस्कृत नवति > प्राकृत नव्वए > हिन्दी नव्वे

(१९) सौ— संस्कृत शत > प्राकृत सअ,सय > हिन्दी सौ

इसी प्रकार अपभ्रंश और हिन्दी के कुछ रूप नीचे दिए जाते हैं—

अपभ्रंश	—	हिन्दी
एगारह	—	ग्यारह
पणम्ह	—	पन्द्रह
अनवीसइ	—	उंन्नीस
बावीस	—	बाईस
अट्ठावीस	—	अट्ठाईस
चउतीस	—	चौंतीस
अट्ठतीस	—	अड़तीस

छायालीस	—	छियालीस
पणपण्णास	—	पचपन
छप्पण	—	छप्पन
छावट्ठि	—	छयासठ, छाछठ
चउरासी	—	चौरासी
छण्णावइ	—	छानवे, छियानबे
णवणउयइ	—	निन्यानवे

२. अपूर्णांक बोधक संख्या विशेषण—

अपूर्ण संख्यावाचक विशेषण से पूर्ण संख्या के किसी भाग का बोध होता है। जैसे—

संस्कृत पादक या पाद > प्राकृत पाअ या पाउ > हिन्दी पउआ या पा पाव।

संस्कृत पादिका से पई जैसे हिन्दी में अध पई। इसी प्रकार शब्द चौथाई संस्कृत के चतुर्थिक से संबद्ध है। ढाई शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

संस्कृत अर्द्धतृतीय > अड्ढतीय (प्राकृत) > हिन्दी अढ़ाई। इसी प्रकार 'सवा' का विकास देखिये—

संस्कृत सपाद > प्राकृत सवाअ > हिन्दी सवा इसी प्रकार—अर्द्ध—अद्ध—आधा, दियड्ढ=डेढ़ अउट्ठ=अहुठ इत्यादि रूप विकसित हुए हैं।

३. क्रमवाचक संख्या विशेषण—

पहला—संस्कृत प्रथर+इल—प्राकृत पथिल्ल अथवा पहिल्ल > हिन्दी पहल > पहला।

दूसरा—संस्कृत द्विसृतः > दोसरा (प्राकृत) > हिन्दी दूसरा। जैसे—दोहाए पेलिअ दोसरे माथें (कीर्तिलता)

तीसरा—संस्कृत त्रिः सृतः > प्राकृत तेसरा > हिन्दी तीसरा जैसे

तेसरा लागि तीनू उपेक्खिअ (कीर्तिलता)

चौथा—संस्कृत चतुर्थ > प्राकृत चउट्ठ > अपभ्रंश चोत्थअ > हिन्दी चोत्थअ > हिन्दी चौथा।

पाँचवाँ—पाँच में वाँ प्रत्यय लगाकर पाँचवाँ बना है। इसी प्रकार इसी प्रत्यय के योग से आगे के सभी रूप बनते हैं।

४, आवृत्ति वाचक संख्यावाचक विशेषण—हिन्दी में पूर्णांक बोधक विशेषण में 'गुना' लगाकर आवृत्ति वाचक विशेषण बनाये जाते हैं जैसे—

दो	से	दुगना
तीन	से	तिगुना
चार	से	चौगुना

हिन्दी में कुछ समुदाय वाचक विशेषण भी प्रचलित हैं। कौड़ियों की गिनती करने में चार के लिए गंडा शब्द का प्रयोग होता है। बारह के लिए दर्जन शब्द का व्यवहार होता है।

हिन्दी के क्रिया विशेषणों की व्युत्पत्ति

अधिकतर क्रियाविशेषण संस्कृत के तद्भव रूप हैं। इनका विकास और व्युत्पत्ति इस प्रकार है।

(१) रीतिवाचक—

संस्कृत एव > प्राकृत तथा अपभ्रंश एम > ऐसे > ब्रजभाषायों

किमि > किन > काजि > कैसे

यत > जाओं > ज्यों

न > नहिं > नहीं

(२) कालवाचक—

अद्य > अज्ज > अज्जु > ब्रजभाषा आजु > हिन्दी आज

अधुना > एवहिंन > अबहिं > अब

(३) स्थानवाचक—

तत्र	>	तहँ	>	तहाँ		
कुत्र	>	कहिं	>	कहं	>	कहाँ
यस्मिन्	>	अहिं	>	जहं	>	जहाँ
तस्मिन्	>	तहिं	>	तहाँ		
ततः ततों	>	तवो	>	तवहिं	>	तब
उपरि	>	ऊप्पर	>	उप्पर	>	ऊपर
पश्चात	>	पच्छा	>	पाछा	>	पीछे

(४) सादृश्य सूचक— अपभ्रंश सओ समाण से समान का प्रयोग होता है।

५. समुचय बोधक— अपभ्रंश 'अनु' से वर्तमान हिन्दी का अन्यथा विकसित हुआ है।

६. विस्मय बोधक— हिन्दी के अहो तथा 'हाय' अपभ्रंश के अहो तथा महह के ही रूपान्तर हैं।

हिन्दी क्रियाओं की व्युत्पत्ति

हिन्दी क्रियाओं की रूप-रचना वियोगात्मक एवं सरल है। हिन्दी में दो ही वचन होते हैं जिनके तीन पुरुषों में तीन तीन रूप होते हैं। हिन्दी की क्रियाओं की संख्या लगभग पाँचसौ है। मुख्य रूप से हिन्दी क्रियाओं (धातुओं) को दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है— मूल धातु और यौगिक धातु।

१. मूल धातुएँ वे हैं जो संस्कृत से हिन्दी में आयी हैं। इनकी संख्या लगभग ३६३ है। ये मूल धातुएँ चार मुख्य भागों में विभक्त की गई हैं।

(१) वे मूल धातुएँ जो तद्भव रूप में प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं से आई हैं।

(२) जो प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं की धातुओं के प्रेरणार्थक रूपों से आई हैं।

(३) जो आधुनिक काल में संस्कृत से तत्सम रूप में आई हैं।

(४) वे मूल धातुएँ जो आधुनिक रूप में संदिग्ध हैं।

२. यौगिक धातुएँ संस्कृत धातुओं से नहीं व्युत्पन्न हुई हैं किन्तु उनका संबन्ध या तो संस्कृत रूपों से है या उन्हें आधुनिक काल में गढ़ा गया है। यौगिक धातुओं को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है—

(१) नाम धातु (हिन्दी जम < संस्कृत जन्म)
(२) संयुक्त धातु (हिन्दी चुक् < संस्कृतच्युत + कृत)
(३) अनुकरण मूलक (हिन्दी फुकना < संस्कृत फड़फड़ाना)

यौगिक क्रियाओं की संख्या लगभग १६० है।

कालरचना— हिन्दी के विविध कालों की क्रियाएँ अपभ्रंश के निम्नलिखित क्रियापदों - से विकसित हैं—

(१) संस्कृत के तिङन्त रूपों के तद्भव
(२) कृदन्त रूपों के तद्भव
(३) तिङन्त तद्भव और कृदन्त तद्भव

१—तिङन्त तद्भव— सामान्य वर्तमान काल के हूँ सहायक क्रिया रूपों का सम्बन्ध √अस् धातु से माना जाता है। जैसे—

संस्कृत अस्मि > प्राकृत अम्हि, अस्मि > ब्रजभाषा हौं > हिन्दी हूँ।

संकृत अस्ति > प्राकृत अत्थि > हिन्दी। सामान्य भूतकाल के था आदि रूपों का विकास संस्कृत √स्था हुआ है।—

संस्कृत स्था > प्राकृत ठाइ, थाइ > हिन्दी था हिन्दी 'होना' के समस्त रूपों का विकास संस्कृत 'स्था' से माना जाता है जैसे—

संस्कृत भवन > प्राकृत होन्तो > हिन्दी होता

संस्कृत भवति > प्राकृत भवति > हिन्दी हुआ

अपभ्रंश में भविष्यत् काल बनाने वाली सहायक क्रिया 'होगा' का कोई रूप नहीं मिलता। पश्चिमी हिन्दी में इनका रूप देखने को मिलता है। ग्रन्थ साहब में —

(१) ना को मेरा किस गही ना को होग्रा न होग।

(२) जो कर पाया सोई होग।

पूर्वी हिन्दी की कुछ बोलियों में बाटै का प्रयोग होता है जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है।

संस्कृत √वृत्— वर्तते > प्राकृत वट्टति > वट्टति > बाटे।

हिन्दी रहना का सम्बन्ध √रह धातु से है। अवधी में अछत तथा भोजपुरी में अछइत का प्रयोग होता है जिसका सम्बन्ध आछ् धातु से है। मैथिली में यह छ् रह गया है। पहाड़ी भाषाओं असमी, कश्मीरी तथा बंगला, मैथिली गुजराती और राजस्थानी में छ् का प्रयोग होता है। वास्तव में इसका मूल है आक्षेति—

संस्कृत आक्षेति > प्राकृत अच्छेति, अच्छे > प्राचीन आर्यभाषा आछे > छे > छै।

२— कृदन्त तद्भव :— काल क्रिया का वह रूपान्तर है जिसके द्वारा क्रिया के व्यापार का समय तथा उसकी अवस्था की सूचना मिलती है। हिन्दी क्रिया के काल हैं—

(१) वर्तमान-काल

(२) भूतकाल

(३) भविष्यत् काल

लेकिन रचना को ध्यान में रखते हुए कालों को प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) वर्तमान कालिक कृदन्त से बने हुए काल :—

ये वर्तमान कालिक कृदन्त में सहकारी क्रिया 'होना' के रूप लगाने से बनते हैं।

(२) भूतकालिक कृदन्तों से बने हुए काल— ये भूतकालिक कृदन्त में सहकारी क्रिया 'होना' के लगाने से बनते हैं।

१— वर्तमान कालिक कृदन्त— वर्तमान कालिक कृदन्त अपभ्रंश में अत प्रत्यय तथा ब्रज अवधी और खड़ी बोली में त के योग से बनाये जाते हैं। इसके ६ प्रकार हैं—

(१) हेतु हेतुमदभूत— जहाँ वर्तमान कालिक कृदन्त को कर्ता के पुरुष लिंग तथा वचन के अनुसार बदल दिया जाता है। इसके साथ सहायक क्रिया नहीं होती—

(१) पर क्या न विषयोत्कृष्टता करती विचारोत्कृष्टता ? (भारत-भारती)

(२) कोदो सवाँ जुरतो भरि पेट
तो काहे तुम्हें हौंपेलि पठौती ? (सुदामा चरित)

(३) यदि उनकी दवादारू होती तो वे बच जाते (गोदान)

(२) सामान्य वर्तमान काल— जहाँ सहकारी क्रिया के सामान्य वर्तमान के रूप जोड़ देने से सामान्य वर्तमान काल बनाया जाता है। जैसे—

(१) वैसे तो हररोज हमसफर मिलते हैं।
क़दम मिलाकर राजमार्ग पर चलते हैं।
लेकिन जीवन के बीहड़ बन में जाकर
वही हमारे हमदम हमको छलते हैं। अयूब 'प्रेमी'
(दर्पण बन गया इतिहास)

(२) योरोप के ही साहिबों को हम सुनाते हैं कथा। (भारत-भारती)

(३) अपूर्ण भूतकाल— इसे बनाने के लिए क्रिया के वर्तमान काल कृदन्त के साथ सामान्य भूतकाल का रूप 'था' जोड़ा जाता है—

(१) जब कोई आकुल अन्तर ले पथ जोहा करता था।
जब मधुर मिलन सपने में मन भी खोया करता था।
—अयूब प्रेमी-दर्पण बन गया इतिहास

(२) तू सुनता रहा मधुर नूपर-ध्वनि
यद्यपि बजती थी चप्पल।
—भारत भूषण अग्रवाल-तारसप्तक

४— सम्भाव्य वर्तमान काल— वर्तमानकालिक कृदन्त के सहकारी क्रिया सम्भाव्य भविष्यत् काल के रूप जोड़ देने से यह काल बनता है। खड़ी बोली में इस के रूप हैं—

कर्ता—पुल्लिंग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	पढ़ता होऊँ	पढ़ते हों
मध्यम पुरुष	पढ़ते हो/पढता हो	पढते हों
अन्य पुरुष	पढ़ता हो	पढ़ते हो

कर्ता—स्त्रीलिंग

उत्तम पुरुष	पढ़ती होऊँ	पढ़ती हों
मध्यम पुरुष	पढती हो	पढ़ती हो
अन्य पुरुष	पढ़ती हो	पढती हों

उदाहरणार्थ—

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ
चाह नहीं मोती माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ।

एक फूल की चाह-माखन लाल चतुर्वेदी

५—संदिग्ध वर्तमान काल— जब वर्तमान कालिक कृदन्त के साथ सहकारी क्रिया जोड़ी जाती हैं तो सन्दिग्ध वर्तमान काल की रचना होती है :—

वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान।
उमड़ कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।।

—सुमित्रानन्दन पंथ

६— अपूर्ण संकेतार्थ काल— इसके बनाने के लिए वर्तमान कालिक कृदन्त के साथ सहायक क्रिया का प्रोग सामान्य संकेतार्थ काल के रूप के साथ ही होता है।

कर्ता—पुलिंग

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	होता	होते
म० पु०	होता	होते
अ० पु०	होता	होंते

कर्ता – स्त्रीलिंग

उ० पु०	होती	होतीं
म० पु०	होती	होतीं
अ० पु०	होती	होतीं

उदाहरण के लिए :—

युयुत्सु :—

मैं भी
सह लेता यदि
सब उच्छृंखलता दुर्योधन की
माता खड़ी होती
बाहें फ़ैलाए
चाहे पराजित ही मेरा माथा होता

—धर्मवीर भारती, अंधायुग

२. भूतकालिक कृदन्त से बने हुये काल— इसके भी छः वर्ग हैं—

(१) सामान्य भूतकाल
(२) आसन्न भूतकाल (पूर्ण वर्तमान काल)
(३) पूर्ण भूतकाल
(४) सम्भाव्य भूत काल
(५) सन्दिग्ध भूतकाल
(६) पूर्ण संकेतार्थ काल

(१) सामान्यभूत— भूतकालिक कृदन्त में कर्ता के पुरुष लिंग, और वचन के अनुसार रूपान्तर करने से सामान्य भूतकाल की रचना होती है। यहाँ सहकारी क्रिया नहीं लगाई जाती। जैसे—

(१) जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बनकर वह आज बरसने आई॥

—प्रसाद आँसू

(२) गुलदस्ते को लिए हँसी भी भागी
खुशबू छोड़ गई।

अयूब प्रेमी यह आस्था यह अंधेरा

(२) आसन्नभूतकाल— भूतकालिक कृदन्त के साथ सहकारी क्रिया में सामान्य वर्तमान के रूप जोड़ने से यह काल बनता है —

(१) बस गई एक बस्ती है, स्मृतियों की इसी हृदय में।
नक्षत्र लोक फैला है जैसे इस नील निलय में॥

—प्रसाद — **आँसू**

(२) मैंने कसकर तुम्हें जकड़ लिया है।
और जकड़ती जा रही हूं।

धर्मवीर भारती—कनुप्रिया

(३) पूर्णभूतकाल — जब भूतकालिक कृदन्त के साथ सहकारी क्रिया के सामान्य भूतकाल के रूप जोड़े जाते हैं तो पूर्ण भूतकाल की रचना होती है। जैसे—

(१) विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहागभरी

—निराला – जुही की कली

(२) कौन आया था न जाने स्वप्न में मुझको जगाने ?

—महादेवी वर्मा

४— सम्भाव्य भूतकाल (कर्मणि प्रयोग)— कर्मवाच्य में क्रिया केवल सकर्मक होती है। जब कर्ता के व्यक्त करने की कोई आवश्यकता नहीं तभी कर्मवाच्य बनाया जाता है। सम्भाव्य भूतकाल की रचना भूतकालिक कृदन्त के साथ 'जाना' क्रिया के रूप लगाने से होती है। जैसे—

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	मैं देखा गया होऊँ	हम देखे गये हों
म० पु०	तू देखा गया हो	तुम देखे गये हो।
अ० पु०	वह देखा गया हो	वह देखे गये हों।

उदाहरण—

(१) मैं जभी तोलने का करती
उपचार स्वयं तुल जाती हूँ।

प्रसाद—कामायनी

(२) पठवा बालि होइ मन मैला (तुलसी–मानस)

५—सन्दिग्ध भूतकाल—यह भूतकाल कृदन्त के साथ सहकारी क्रिया के सामान्य भविष्यत् काल के रूप जुड़ने पर बनाया जाता है। कर्तरि प्रयोग में इसके रूप ऐसे चलाए जाते हैं—

कर्ता—पुल्लिंग

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	चला होऊँगा	चले होंगे
म० पु०	तू चला होगा	चले होंगे
अन्य पु०	चला होगा	चले होंगे

कर्ता—स्त्रीलिंग

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	चली होऊँगी	चली होंगीं
म० पु०	चली होगी	चली होंगी
अन्य पु०	चली होगी	चली होंगीं

उदाहरण :—

(१) तुम अब भूल गई होंगी
वह प्यारा आलम !

रहमान राही—अनुवाद अयूब प्रेमी

तर्जनी के पोरने—
लिख दिया होगा अगणित बार
आंसुओं ने धो दिया होगा मधुर संसार

—अयूब प्रेमी—दर्पण बन गया इतिहास

६—पूर्ण संकेतार्थ काल – भूतकालिक कृदन्त के साथ सामान्य संकेतार्थ काल के रूप लगाने से पूर्ण संकेतार्थ काल बनाया जाता है। जैसे—

कर्ता—पुल्लिंग

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	मैं चला होता	हम चले होते
म० पु०	तू चला होता	तुम चले होते
अ० पु०	वह चला होता	वे चले होते

कर्ता—स्त्रीलिंग

	एक वचन	बहुवचन
उ० पु०	मैं चली होती	हम चली होतीं
म० पु	तू चली होती	तुम चली होतीं
अ० पु०	वह चली होती	वे चली होतीं

उदाहरण :—

१. माता खड़ी होती
बाहें फैलाये
चाहे पराजित ही मेरा माथा होता

धर्मवीर भारती अन्धायुग

(२) अगर तुम भी नहीं होते
तो अब तक मर गया होता।

भविष्यत् कृदन्त का प्रयोग अपभ्रंश, अवधी तथा प्राचीन ब्रज में कहीं कहीं होता था लेकिन आधुनिक हिन्दी में इसका पूरी तरह से अभाव है।

संयुक्त क्रिया— हिन्दी की जो क्रियाएँ मुख्य धातु या कृदन्तों के योग से क्रिया के अर्थ में अन्तर उपस्थित करती हैं उन्हें संयुक्त क्रिया कहा जाता है। धातुओं के विशेष कृदन्तों के आगे कुछ क्रियाओं के जोड़ने से ही इनकी रचना होती है जैसे—

आ— बच आना, घिर आना, बढ़ आना, पढ़ते आना, चलते आना,
उठ— चौंक उठना, बोल उठना,
चुक— पढ चुकना, सो चुकना आदि,।
जा— सो जाना, भूल जाना कुचल जाना, पढ़ते जाना, घटते जाना, चला जाना, मारा जाना पीटा जाना।
डाल— मार डालना काट डालना, तोड़ डालना,
दे— चल देना, लिख देना, दे देना, खो देना, जाने देना, खाने देना.
पड़— चल पड़ना सुन पड़ना, सूझ पड़ना।
बैठ— उठ बैठना, चल बैठना, खा बैठना
रख— रोक रखना, समझ रखना।
ले— ले लेना, खा लेना, सो लेना।

सक— चल सकना, फिर सकना, उठ सकना।

रह— आते रहना, जाते रहना, पाते रहना, खोते रहना, मिलते रहना, सोते रहना, हँसते रहना आदि।

कर— चला करना, सोया करना, खाया करना।

चाह— जाना चाहिए, खाना चाहिए, रखना चाहा, खाना चाहा, रखना चाहा, खाना चाहा, रखना चाहता है, रखना चाहेगा।

पा— जाने न पाना, बोलने न पाना।

संयुक्त क्रिया का निश्चय वाक्य के अर्थ से होता है। जहाँ कृदन्त की क्रिया मुख्य होती है और काल की क्रिया कृदन्त की विशेषता सूचित करती हैं वहीं दोनों को संयुक्त क्रिया कहते हैं। रूप के विचार से संयुक्त क्रिया के आठ प्रकार हैं—

(१) क्रियार्थक संज्ञा के योग से बनी हुई
(२) वर्तमान कालिक कृदन्त के योग से बनी हुई।
(३) भूतकालिक कृदन्त के योग से वनी हुई।
(४) पूर्व कालिक कृदन्त के योग से बनी हुई।
(५) अपूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त के योग से बनी हुई।
(६) पूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त के योग से बनी हुई।
(७) संज्ञा या विशेषण से बनी हुई।
(८) पुनरुक्त संयुक्त क्रियाएँ।

१. क्रियार्थक संज्ञा के योग से बनी हुई— पड़ना, होना, चाहिए, लगना, देना पाना, सहकारी क्रियाओं को जब क्रियार्थक सज्ञा के साधारण रूप के साथ जोड़ दिया जाता है तब यह रूप बनता है जैसे—

(१) स्वच्छन्दता से कर तुझे करने पड़े प्रस्ताव जो (भारत भारती)
( ) भावों को उत्पन्न होने देने की जरूरत है।
(३) हम सभी को एकता का भाव रखना चाहिए।
(४) दुर्भावना के वारि से उग वह बड़ा होने लगा। (भारत भारती)
(५) उसको न आने दीजिए, मुझको न जाने दीजिए।
(६) शत्रु की मनहूस छाया देश पर पड़ने न पाये।

२— वर्तमानकालिक कृदन्त के योग से बनी हुई— वर्तमान कालिक कृदन्त के आगे आना, जाना, रहना क्रिया जोड़ने से ये संयुक्त क्रियाएँ बनती हैं जैसे—

(१) कितने रूप देखता आया जीवन की अनजान डगर में।

(२) इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवन में टिक रहना। (प्रसाद)

३. भूतकालिक कृदन्त के योग से बनी हुई— भूतकालिक कृदन्त के पश्चात् जाना, करना, चाहना जोड़ देने से इस संयुक्त क्रिया की रचना होती है जैसे—

(१) मन ह्वै जात अजौं बहै उहि जमुना कै तीर। (बिहारी)

(२) बारह बरस दिल्ली रहे, पर भाड़ ही झोंका किये। (भारत भारती)

४— पूर्वकालिक कृदन्त के योग से बनी हुई— पूर्वकालिक कृदन्त के बाद उठना, आना, जाना, लेना, देना, पड़ना, डालना, रहना, रखना, सकना, चुकना क्रिया के योग से बनती हैं। जैसे—

(१) मोहि देखत कहि उठी (सूरदास)

(२) इनके कुल ऐसी चलि आई (सूरदास)

(३) बढ़त बढ़त संपत सलिल मन सरोज बढ़ि जाय (बिहारी)

(४) सो मो सन कहि जात न कैसे (तुलसी-मानस)

(५) यही समझ लेना प्रियतम तुम जैसे प्यार किया न कभी।

(६) कह देना वेवफा मुझे ही मैंने प्यार किया न कभी।

(७) पर कौन उनमें मनुज-मन को मुग्ध इतना कर सके (भारत-भारती)

(८) मैं तो सब कर चुका आज तेरी बारी आई है।

५— अपूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त के योग से बनी हुई— अपूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त के बाद 'बनना' क्रिया जोड़ने से सयुक्त क्रियाएँ बनती हैं। जैसे—

(१) उससे खाते नहीं बनता है।

(२) घर में रहते नहीं बनता है।

६— पूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त से बनी हुई :— पूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त के योग से बनी हुई संयुक्त क्रियाएँ लेना, देना के जोड़ने से बनती है :—

(१) वह कोई वस्तु उठाए लिए जाता है।

(२) कहै देती यह राधरौ सब गुण बिन गुन माल। (बिहारी)

७— संज्ञा या विशेषण के योग से बनी हुई — करना, होना और देना का प्रयोग होता है। जैसे—

(१) पुण्य लूट लो क्योंकि शरीर को चिता में जल कर भस्म होना है।

(२) मुझे तो मौत भी स्वीकार करना है।

(३) मुझे अपने प्राणों की आहुति देना है।

८— पुनरुक्त क्रियाएँ— दो समान अर्थवाली अथवा समान ध्वनि वाली क्रिया का संयोग होने से ये क्रियाएं बनती हैं। जैसे :— पढ़ना-लिखना, खाना-पीना, देखना-भालना आदि।

प्रेरणार्थक

प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं में प्रेरणार्थक क्रियाओं को 'अय' के योग से बनाया जाता था जैसे :— कारयति, चोरयति आकारान्त धातुओं में 'आपय' लगा करता था जैसे दापयति, स्नापयति। प्राकृत में अय प्रत्यय 'ए' तथा 'आपय' आव हो गया है। यही क्रमानुसार हिन्दी में 'आ' तथा 'वा' में विकसित हुए हैं। जैसे—

चल	+	आ	=	चला
चल	+	वा	=	चलवा
पीना	+	आ	=	पिया
पीना	+	वा	=	पिलवा
सो	+	वा	=	सुलवा
सो	+	आ	=	सुला

नाम धातुएँ

प्राकृत तथा अपभ्रंश में नाम धातुएँ पाई जाती थीं। हिन्दी में भी उनका प्रचलन है। हिन्दी में 'आ' का योग करके नाम धातुएँ बनाई जाती हैं। जैसे—

दुख + आ = दुखाना

अपना + आ = अपनाना

संस्कृत तत्सम तथा तद्भव शब्दों से भी नाम धातुएँ बनी हैं जैसे—

लाठी	से	लठियाना
विचार	से	विचारना
गर्म	से	गर्माना
शर्म	से	शर्माना

हिन्दी अव्ययों की व्युत्पत्ति

कुछ क्रिया-विशेषणों को छोड़ कर शेष अव्यय संस्कृत के तद्भव हैं। कुछ में ध्वन्यात्मक परिवर्तन भी हुए हैं। अव्यय उस शब्द को कहते हैं जिसमें विकार न हो। संस्कृत में इसके अन्तर्गत उपसर्ग, प्रत्यय, विभक्तियाँ आदि आते हैं लेकिन हिन्दी में उपसर्ग तथा प्रत्यय इसके अन्तर्गत नहीं माने जाते। इनके कुछ रूपों के विकास संस्कृत से हिन्दी में नीचे दिये जाते हैं :—

१— कालवाचक—

आज—अद्य > अज्जु > आज

अब —अधुना > एवहिं > अबहिं > अब

कल — कल्य > कल्ल > कल

परसों—परश्वः > परस्सो परसों

जब — यदा > जव्वा > जब

तब — तदा > तव्वा > तब

प्रात — प्रातः > पातो >प्रात

तुरंत — त्वरित > तरित्त > तुरन्त

नित > नित्य > नित्त > नित

बारबार — वारंवारम् > बारवार

सवेरा — सवेला > सवेरा

तो — ततः > ततो > तो

पीछे — पश्चात् > पच्छा > पच्छए > पाछे > पीछे

२— स्थानवाचक—

भीतर — अभ्यन्तर — भिन्तर > भीतर

बाहर — बहिः > बहिर > बाहर

ऊपर — > ऊपरि > ऊपर

नीचे — नीचैः > नीचे

ऊँचा — उच्चैः > ऊँचा

पास — पार्श्वः > पास
दूर — दूरं > दूर
आगे — अग्रे अग्गे > आगे
पीछे — पश्चात् > पच्छए > पाछे, पीछे
सामने — समक्षं > सामने
कहाँ — कुत्र > कुत्थ > कुह > कहँ > कहाँ
यहाँ — यत्कक्षं > जक्खं > जहँ > जहाँ
(गढ़ वाली बोली में यख का प्रयोग है)
तहाँ — तत्कक्षं > तक्खं > तहँ > तहाँ
(गढ़ वाली बोली में तख का प्रयोग है)
इतै — अत्र > इतै
जितै — यत्र जितै
तितै — तत्र तितै
कुतै — कुत्र > कुतै
जहाँ — यस्मिन् > यम्हि > जहिं > जहँ > जहाँ

३. रीतिवाचक—

यों — एवं > एवँ > एउँ > यों
नहीं — नास्ति > नत्थि > णाहिं > नाहिं > नहीं
कैसे — किमि > कैसे
ऐसे — इमि > ऐसे
निरा— नितराम् > णिराइउ > निरा
हाँ — आम > हाँ

४— दिशावाचक—

दाहिना — दक्षिणं > दाहिना
बायाँ — वाम > बायाँ
ओर — ओरं > ओर
अलग — अलग्नं > अलग्गं > अलग
इधर — यस्मिन्धुरे > इधर
(धुर दक्षिण, धुर उत्तर का प्रयोग होता है)
किधर — कस्मिन्धुरे > किधर

५— परिमाण वाचक—

बहुत — बहुः > बहुत

कुछ — किंचिद् > किंछ > किछु > कुछ

इतना — इयत > इतना

कितना — कियत > कितना

६— समुच्चय बोधक —

और — अपरं > अवरं > और

भी — अपि > भी

पर — परंच > पर

जो — यः > जो

७. विस्मयादि बोधक :—

हर्षबोधक — आहा > अहो > अहह > आहा

शोक बोधक — हाय > हाहन्त > हाय

तिरस्कार बोधक — धिक्कार – धिक्-धिक् > धिक्कार

स्वीकार बोधक—हाँ—आम > आँ > हाँ

सम्बोधन—अरे—अयि ! > अरि ! > अरे

——

हिन्दी की ध्वनियों की व्युत्पत्ति और विकास

ध्वनियों का वर्गीकरण उच्चारण स्थान और उच्चारण रीति के आधार पर श्वास और नाद में किया जाता है। स्वर-तन्त्रियों के बीच के अवकाश को काकल कहा जाता है। लेकिन जब स्वर-तन्त्रियों के बीच कोई अवकाश नहीं होता अर्थात् वे एक दूसरे से मिली हुई होती है और हवा धक्का देकर उनके बीच से गुज़रती है उस समय उत्पन्न होने वाली ध्वनि को नाद कहा जाता है। जब स्वर-तन्त्रियाँ काकल की स्थिति में होती हैं अर्थात् एक दूसरे से अलग होती हैं उस समय हवा बिना धक्का दिये गुज़र जाती है उस समय उत्पन्न होने वाली ध्वनि को श्वास कहा जाता है।

ध्वनियाँ दो प्रकार की हैं— स्वर और व्यंजन। जब स्वर-यंत्र के तार आपस में झंकार उत्पन्न करते हुए श्वास का विकार पैदा करते हुए श्वास का विकार पैदा करते हैं तब उस विकार को घोष की संज्ञा दी जाती है। सभी स्वरों के उच्चारण में घोष की स्थिति होती है। इस प्रकार स्वर उस सघोष ध्वनि को कहते हैं जिसके उच्चारण में श्वास नली से श्वास बिना किसी संघर्ष या स्पर्श के साथ मुख से बाहर निकलती है। इसके विपरीत व्यंजन उस सघोष या अघोष ध्वनि को कहते हैं जिसके मुख से निकलते समग्र स्पर्श या घर्षण अवश्य होता है। स्वर सभी नाद होते हैं। उदाहरण के लिए—

नाद व्यंजन — ग्, ज्, ड्, ब्, द्। (वर्ण माला के प्रत्येक वर्ग का तृतीय वर्ण)

श्वास ,, — क्, च्, ट्, प्, त्। (वर्ण माला के प्रत्येक वर्ग का प्रथम वर्ण)

ध्वनियों के वर्गीकरण के निम्नलिखित रूप हैं—

१— स्वर-तन्त्रीय प्रयत्न— इसके अनुसार दो रूप हैं— घोष और अघोष। हिन्दी में सभी स्वर तथा वर्गों के अन्तिम तीन वर्ण घोष के अन्तर्गत आते हैं—

स्वर – अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं अः।
घोष व्यंजन—ग् घ् ङ्, ज् झ् ञ् ड्, ढ् ण्, द ध् न्, ब् भ्, म्।

इनके अतिरिक्त ह्, य्, र्, ल् व् भी घोष व्यंजन है।

अघोष— क्, ख्, च्, छ्, ट्, ठ्, त्, थ्, प्, फ्, तथा श्, ष्, स् अघोष व्यंजन हैं।

२— आभ्यन्तर प्रयत्न— इसके दो वर्ग हैं—

(१) स्वर-ध्वनियाँ— स्वर-सघोष ध्वनि है जिसके उच्चारण करते समय जिह्वा की प्रधान तीन अवस्थाएँ होती हैं— आड़ी, खड़ी तथा दोनों के बीच की अवस्था। आड़ी अवस्थाओं के आधार पर स्वरों के अग्र, मध्य और पश्च तीन भेद हो जाते हैं:—

अग्र — ई → ईख में

मध्य — अ → रईस में

पश्च — ऊ → ऊपर में

जिह्वा की खड़ी स्थिति में जिह्वा स्वर के उच्चारण में बिना रगड़ खाये ऊँची उठ जाती है। ऐसे स्वर को संवृत्त कहा जाता है। जहाँ स्वर के उच्चारण में जिह्वा नीचे की ओर जाती है उसे विवृत्त कहते हैं। इन दोनों के बीच के अन्तर को चार वर्गों में विभाजित किया जाता है— संवृत्त, ईषत् संवृत्त, विवृत्त, ईषत् विवृत्त जैसे—

संवृत्त — ऊ → ऊपर, धूमिल

ईषत् संवृत्त — ए → अनेक, सेठ

विवृत्त — आ → आम—शाम

ईषत् — ओ → बोतल, ठोकर

जिन स्वरों के उच्चारण में ओठों का आकार गोल हो जाता है। ये वृत्ताकार स्वर कहलाते हैं और शेष अवृत्ताकार कहलाते हैं। जैसे उ, ऊ, ओ, औ वृत्ताकार हैं और शेष अवृत्ताकार हैं।

(२) व्यंजन ध्वनियाँ— यदि उच्चारण की प्रकृति अर्थात् आभ्यन्तर प्रयत्न के अनुसार व्यंजनों पर विचार किया जाव तो उन्हें आठ वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

१. स्पर्श :— जहाँ अवयव एक दूसरे से स्पर्श करते हैं। हवा मुख में रुक जाने के कारण धक्का देकर बाहर निकलती है और स्फोट की ध्वनि पैदा होती है। जैसे क या प।

२. घर्ष :— उच्चारण करते समय वायु-मार्ग के संकीर्ण हो जाने के कारण सर्प की सी शीत्कार या ऊष्म ध्वनि पैदा होती है क्योंकि जिह्वा और दन्तमूल का मार्ग खुला होता है, जैसे स्, ष्, श् और ज इत्यादि

३. स्पर्श-घर्ष— जहाँ उच्चारण करते समय स्पर्श के साथ घर्षण से या रगड़ खाने से ध्वनि पैदा होती है जैसे—

च् छ् ज् झ् ।

४. अनुनासिक— उच्चारण में कोमल तालु (soft palate) के झुक जाने से जब हवा नाक के स्वर के साथ निकलती है जैसे—

ण् न् म् ञ् ङ् ।

५. पार्श्विक— उच्चारण में जब हवा मुख के मध्य में रुक जाती है और जिह्वा के अगल बगल (पार्श्व) से बाहर निकलती है जैसे— ल।

६. लुण्ठित— उच्चारण करते समय जिह्वा की नोक मसूड़े पर जाती है और दो तीन बार जल्दी जल्दी श्वास को रोककर छोड़ देती है। जिह्वा बेलन की भाँति लपेट खाती हुई तालु का स्पर्श करती है जैसे— 'र्' ध्वनि

७. उत्क्षिप्त— उच्चारण करते समय जब जिह्वा तालु के किसी भाग को वेग से मार कर अलग हो जाती है जैसे— ढ़, ड़, ध्वनि

८. अर्धस्वर— कुछ व्यंजन अर्ध स्वर की भाँति उच्चरित होते हैं जैसे य तथा व ध्वनियाँ।

३— उच्चारण स्थान— इसके आधार पर ध्वनियों के आठ भेद होते हैं—

(१) काकल्य— जो ध्वनि काकल (ग्लाटिस) के स्थान से उत्पन्न होती है उसे काकल्य कहते हैं जैसे 'ह' ध्वनि

(२) कंठ्य — जो ध्वनि कंठ से उत्पन्न होती है उसे कंठ्य कहते हैं। कंठ तालु का कोमल भाग (soft palate) है। जब जिह्वा मध्य कोमल तालु का स्पर्श करती है तो कंठ्य ध्वनि उच्चरित होतीं है। जैसे— ,क्' 'ख्'।

(३) मूर्धन्य— कठोर तालु के पिछले भाग और जिह्वा के आगे से उच्चरित ध्वनि को मूर्धन्य ध्वनि कहा जाता है। जैसे—

ट, ठ, ष, आदि।

(४) तालव्य— कठोर तालु के आगे के भाग तथा जिह्वोपाग्र से उच्चारण की गई ध्वनि को तालव्य कहते हैं जैसे— च्, छ्, ङ्

(५) वर्त्स्य— दन्तमूल के ऊपर उभरे हुए स्थान को वर्त्स कहा जाता है। तालु के अन्तिम भाग, ऊपरी मसूड़ों और जिह्वा की नोक से उच्चरित ध्वनि को वर्त्स्य कहते हैं। जैसे— न, ह्न ध्वनियाँ

(६) दंत्य— जो ध्वनियाँ ऊपर के दाँतों की पंक्ति और जिह्वानोक से उच्चरित होती है उन्हें दंत्य कहते हैं जैसे—
त, थ, द, ध, ध्वनियाँ

(७) ओष्ठ्य— जिन ध्वनियों का उच्चारण ओठों द्वारा होता है उन्हें ओष्ठ्य कहते हैं। ये दो प्रकार की होती हैं— दन्तोष्ठ्य और द्वयोष्ठ्य। उदाहरण के लिए ओठ और ऊपर के दाँतों से व और फ दन्त्योष्ठ्य ध्वनियों का उच्चारख होता है तथा प और फ ध्वनियों का दी ओठों के द्वारा उच्चारण होता है अतः ये द्वयोष्ठ्य ध्वनियाँ हैं।

(८) जिह्वामूलीय— वे फारसी ध्वनियाँ जो हिन्दी ; प्रयुक्त होने से अपना ली गई हैं जो जिह्वा के मूल से उच्चरित होती हैं उन्हें चिह्वामूलीय ध्वनियाँ कहते हैं जैसे - क़, ख़, ग़, ज़, फ़ जैसी ध्वनियाँ।

हिन्दी ध्वनियों के विकास-क्रम की अनेक स्थितियाँ हैं। हिन्दी की ध्वनियाँ वैदिक, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश की ध्वनियों के विकास की अन्तिम अवस्था के रूप में मानी जा सकती हैं।

वैदिक ध्वनियाँ— वैदिक ध्वनियों की संख्या ५२ है जिनका वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में है।

१. ९ मूल स्वर— अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, और लृ,

२. ४ संयुक्त स्वर— ए (अ+इ), ऐ (आ+इ), ओ (अ+उ), औ (आ+उ)

३. २७ स्पर्श व्यंजन— स्थान-भेदों के अनुसार इन्हें पाँच वर्गों में विभक्त किया गया है—

कंठ्य — क्, ख्, ग्, घ्, ङ् ।

तालव्य — च्, छ्, ज्, झ्, ञ्,

मूर्द्धन्य, — ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्।

दन्त्य, — त्, थ्, द्, ध्, न्।

ओष्ठ्य — प्, फ्, ब्, म् म्।

४. चार अन्तस्थ — य्, र्, ल्, व् ।

५. छः ऊष्म — श्, ष्, स्, विसर्गः, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय ।

६. एक सघोषऊष्म ह् ।

७. एक शुद्ध अनुस्वार— ं

संस्कृत ध्वनियाँ – वैदिक ध्वनियों में से, ळ्ह, ळ ह, को छोड़ कर शेष संस्कृत की ध्वनियाँ हैं। स्वरों में ऋ एवं ऌ के उच्चारण मूल स्वरों की भाँति ही रहे। ए, ओ का उच्चारण संस्कृत में मूल स्वरों की भाँति होता रहा। संस्कृत ध्वनियाँ ५२ ही हैं।

पालि और प्राकृत ध्वनियाँ— पालि और प्राकृत ध्वनियों का विकास संस्कृत की ध्वनियों से ही हुआ है। यहाँ तक आते आते संस्कृत की कुछ ध्वनियाँ लुप्त हो गई हैं। जैसे पालि में श, ष के स्थान पर केवल स का ही प्रयोग मिलता है। ऋ, ॠ, ऌ, ऐ, औ तथा अः (विसर्ग) की ध्वनियाँ पालि में नहीं होतीं। इस प्रकार पालि में दस स्वर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ ओ, औ, होते हैं। पालि में दो नये स्वर ऍ तथा ऑ आगए हैं। इस प्रकार कुल ४६ ध्वनियाँ हैं

अपभ्रंश ध्वनियाँ— अपभ्रंश में प्राकृत तथा पालि की सभी ध्वनियाँ प्राप्त हैं जिनका रूप इस प्रकार है—

स्वर ध्वनियाँ—

ह्रस्व स्वर— अ, इ, उ, ए, ओ,

दीर्घ स्वर — आ, ई, ऊ, ऐ, औ।

व्यंजन ध्वनियाँ—

कण्ठ्य— क् ख्, ग् घ्।

तालव्य— च्, छ्, ज्, झ् ।

मूर्द्धन्य— ट् ठ् ड् ढ्।

दन्त्य— त् थ् द् ध् न्।

ओष्ठ्य— प् फ् ब् म् म्।

अन्तस्थ— य र ल व

ऊष्म— स ह।

संस्कृत के ऋ ऐ और औ में से अन्तिम तीन स्वरों का अपभ्रंश में बिल्कुल व्यवहार नहीं होता। ऋ का विकल्प कहीं मिल जाता है। इस प्रकार अपभ्रंश में कुल ध्वनियों की संख्या ३८ रह गई है। कुछ स्वरों का अपभ्रंश में इस प्रकार विकास मिलता है—

(१) लृ > इ > इलि, जैसे कलृन्न > किन्नो या किलिन्ना

(२) ऐ > ए > अइ, जैसे अपरेक > अवरक, देव > दइअ > दई

(३) ओ औ > अउ जैसे यौवन > जोव्वण, गौरीं > गउरी।

(४) ऋ > अ जैसे तृण > तणु, पृष्ठ > पट्ठि।

(५) ऋ > ए गृह > गेह।

ब्रजभाषा की ध्वनियाँ—

मूल स्वर— अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ

संयुक्त स्वर— ए, ऐ, ओ, औ

व्यंजन— कंठ्य = क् ख् ग् घ्

तालव्य = च् छ् ज् झ्

मूर्द्धन्य = ट् ठ् ड् ढ्

दन्त्य = त् थ् द् ध्

ओष्ठ्य = प् फ् ब् भ्

अनुस्वार = ङ् ञ् ण् न् न्ह म म्ह

अन्तस्थ = य् र् र्ह् ल् ल्ह व्

ऊष्म = श् स् ह्

विसर्ग = :

इस प्रकार कुल संख्या ४६ है

प्राय: ब्रजभाषा में ऋ का प्रयोग रि के रूप में होता है। लेकिन सूरदास और तुलसी की कविताओं में ऋ रूप सुरक्षित है। वहाँ ऋतु, ऋन, कृपा, दृढ़, मृग, जैसे शब्द मिल जाते हैं। अवधी और ब्रजभाषा में ध्वनियों की समानता दिखाई देती है।

खड़ी बोली की ध्वनियाँ—

मूल स्वर— अ, इ, उ, ऋ

दीर्घ स्वर— आ, ई, ऊ, ए, ऐ ओ, औ, अं, अः

व्यंजन— कंठ्य = क् ख् ग् घ् ङ्:

तालव्य = च् छ् ज् झ् ञ्

मूर्द्धन्य = ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्,

दन्त्य = त्, थ्, द्, ध्, न्।

ओष्ठ्य = प्, फ्, व्, भ्, म्।

उत्क्षिप्त = ड़्, ढ़्।

अन्तस्थ = य्, र्, ल्, व्।

ऊष्म = श, ष, स, ह,।

संयुक्त व्यंजन = क्ष्, त्र्, ज्ञ्।

फारसी ध्वनियाँ = क़्, ख़्, ग़्, ज़्, फ़्।

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी में कुल ५६ ध्वनियाँ हैं। हिन्दी की इन ध्वनियों के निर्माण में वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, अवधी तथा ब्रजभाषा की ध्वनियों का योगदान रहा है। आधुनिक हिन्दी की ये ध्वनियाँ अनेक नियमों के द्वारा परिवर्तित होती हुई इस रूप में विद्यमान हैं।

ध्वनि विकार अथवा ध्वनि परिवर्तन के कारण— भाषा के विकास के साथ ध्वनियों में परिवतन होता रहता है। भाषा में ध्वनि- परिवर्तन अनेक दिशाओं में होता रहा है।

१. लोप— शीघ्रता में उच्चारण करते हुए लोगों से स्वराघात हो जाता है। कभी स्वर लोप होता है तो कभी व्यंजन लोप होता है। लोपीकरण के तीन रूप हैं— (१) आदि लोप (२) मध्य लोप (३) अन्त लोप।

आदि लोप— (क) स्वर का आदि लोप— अनाज⟶नाज, आभ्यन्तर⟶भीतर

(ख) स्वर का मध्य लोप— इमली → इम्ली, कपड़ा → कप्ड़ा
(ग) स्वर का अन्तलोप — निद्रा → नींद, परीक्षा → परख
(घ) आदि व्यंजन लोप — स्थान → थान, श्मशान → मसान
(च) मध्य व्यंजन लोप — सूची → सुई, घरद्वार → घरबार
(छ) अन्त व्यंजन लोप — आम्र → आम

२. अक्षर लोप— एक ही शब्द में जब दो समान अक्षर एक साथ प्रयुक्त होते हैं तो एक अक्षर का लोप हो जाता है। इस में भी आदि, मध्य और अन्त लोप होता है—

आदि अक्षर लोप— शहतूत→तूत, त्रिशूल→शूल
मध्य अक्षर लोप— भांडागार→भंडार, स्वर्णकार→सुनार
अन्त अक्षर लोप— माता→मां, मौक्तिक→मोती

३. आगम—आगम उच्चारण की सुविधा के कारण होता है।

(क) आदि स्वरआगम— स्नान → इस्नान या अस्नान
स्तुति → अस्तुति
(ख) मध्यस्वरागम—स्वर्ण → सुवर्ण, पूर्व → पूरब
श्रम → भरम, धर्म → धरम
(ग) अन्त स्वरागम— स्वप्न → सपना, सोच → सोचु
(च) आदि व्यंजनागम— ओष्ट → होठ, अस्थि → हड्डी
(छ) मध्य व्यंजनागम — जेल → जेहल, शाप → श्राप
(ज) अन्त व्यंजनागम —भ्रू → भौंह, कल → कल्ह

४ वर्ण-विपर्यय विपर्यय की विशेषता हिन्दी भाषा में बहुत पाई जाती है। जब शब्द में स्वर, व्यंजन एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानापन्न हो जाते हैं। तब वर्ण-विपर्यय कहलाता है। जैसे—

(१) स्वर विपर्यय— उल्का → लूका
जानवर → जानावर
अंगुली → उँगली
इक्षु → ईख या ऊख

(२) व्यंजन विपर्यय — चिह्न → चिन्ह
डूबना → बूड़ना
लखनऊ → नखलऊ

५. संधि और एकी भाव — ध्वनि परिवर्तन में सन्धियों का बहुत योग होता है। शब्द के उच्चारण में जहाँ विवृत्ति रहती हैं वहाँ यह विकार होता है जैसे

नयन → ने + अयन = नैन

चामर → चा + मर = चवँर, चौर

६. समीकरण— जब एक ध्वनि दूसरी ध्वनि को प्रभावित करके अपना रूप दे देती है तब समीकरण का नियम होता है दूसरे शब्दों में एक वर्ण का दूसरे वर्ण के कारण समान या सजातीय रूप धारण करना समीकरण कहलाता है। इसके दो भेद हैं—पुरोगामी तथा पश्चगामी। इनके भी दो भेद हो जाते हैं :— दूरवर्जित पुरोगामी, पार्श्ववर्ती पुरोगामी, दूरवर्ती पश्चगामी और पार्श्ववर्ती पश्चगामी। दूरवर्ती पुरोगामी— जब दो ध्वनियाँ पास न रहकर दूर-दूर रहती हैं और पहली ध्वनि से दूसरी ध्वनि प्रभावित होती है जैसे— भ्रष्ट→भरभट

पार्श्ववर्ती पुरोगामी— जहाँ ध्वनियाँ एक दूसरे के बहुत निकट होती हैं जैसे— चक्र → चक्क

लग्न → लग्ग

दूरवर्ती पश्चगामी— जब दूसरी ध्वनि पहली ध्वनि को प्रभावित करती है और सजातीय बना लेती हैं। जैसे

खरकट → करकट

नील → लील

पार्श्ववर्ती पश्चगमी — जब दूसरी ध्वनि का ही द्वित्व हो जाना है। जैसे—

धर्म → धम्म

कर्म → कम्म

दुग्ध → दुद्ध

७. विषमीकरण— जब एक ही शब्द में दो समान ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं और एक का लोप हो जाता है। इसके दो रूप हैं— पुरोगामी और पश्चगामी

(१) पुरोगामी विषमीकरण— जब पहला वर्ण अपरिवर्तित रहता है और दूसरा परिवर्तित हो जाता है तभी पुरोगामी विषमीकरण होता है। जैसे :

काक → काग

कंकण → कंगन

(२) पश्चगामी विषमीकरण— जब द्वितीय वर्ण अपरिवर्तित रहता है और पहले वर्ण में परिवर्तन होता है तो पश्चगामी विषमीकरण कहलाता है। जैसे

मुकुट ⟶ मेउर

नूपुर ⟶ नेउर

८. अनुनासिकता—कुछ ध्वनियों के परिवर्तन में अनुनासिकता कारण बन जाती है। यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है। जैसे—

सर्प ⟶ साँप

भ्रू — भौंह

शपथ ⟶ सौंह

९. प्रयत्न-लाघव—जब वक्ता कम से कम प्रयत्न में मुख-सुख के कारण शब्द को बोलने का प्रयत्न करता है तब प्रयत्न-लाघव ध्वनि-परिवर्तन का कारण बनता है। जैसे

ब्राह्मण ⟶ बामन

प्रियतम ⟶ प्रीतम

धर्म ⟶ धरम

कर्म ⟶ करम

१०. स्वराघात—जब बोलते समय शब्द के किसी एक वर्ण या व्यंजन पर बल दिया जाता है तो स्वराघात हो जाता है। जैसे :—

कुष्ट ⟶ कोढ़

कुक्षि ⟶ कोख

बिल्व ⟶ बेल

आभ्यंतर ⟵ भीतर

ध्वनि सम्बन्धी विशेष प्रवृत्तियाँ—

(१) संयुक्त व्यंजनों में सरलता लाने के लिए इस प्रवृत्ति का नियम दिखाई देता है। यह प्रवृत्ति संस्कृत से प्राकृत तथा हिन्दी में चली आई हैं—

निःश्वास > निस्सास > निसास

उच्छ्वास > उस्सास > उसास

कर्पूर > कप्पूर > कपूर

आलस्य > आलस्स > आलस

मित्र > मित्त > मीत

(२) समीकरण-प्रक्रिया—मध्य के क् ग् च् ज् त् द प् य् व् व्यंजनों के लोप होने से हिन्दी में ह्रस्वादेश भी मिलता है। जैसे—

सं०	सहकार	>	अपभ्रंश	सहआर	>	हिन्दी	सहार
,,	स्वर्णकार	>	,,	सुण्णार	>	,,	सुनार
,,	अंधकार	>	,,	अंधआर	>	,,	अंधार (अंधेरा)
,,	मयूर	>	,,	मऊर	>	,,	मोर

३. ह्रस्वीकरण की प्रवृत्ति— कभी-कभी द्वितीय अक्षर पर स्वरपात होने के कारण पूर्ववर्ती स्वर में क्षतिपूरक दीर्घीकरण के स्थान पर ह्रस्वीकरण की प्रवृत्ति दिखाई देती है। जैसे—

सं०	भिक्षा	>	अप०	भिक्खा	>	हि०	भीख
,,	ग्राम:	>	अप०	गाउँ	>	हि०	गाँव

४. अन्त्य दीर्घ स्वर का ह्रस्वीकरण — संस्कृत के जो अन्त्य दीर्घ स्वर अपभ्रंश तक आते आते ह्रस्व हो गये थे वे हिन्दी में भी सुरक्षित हैं, जैसे :-

श्वश्रू	>	सासु
वल्गा	>	बाग
जिह्वा	>	जीभ
बुभुक्षा	>	भूख
भिक्षा	>	भीख
शय्या	>	सेज
सपत्नी	>	सौत
लज्जा	>	लाज
पीड़ा	>	पीर

५. स्वर-भक्ति एवं विप्रकर्ष की प्रवृत्ति— ध्वनि-परिवर्तन में सावर्ण्य की अपेक्षा स्वर-भक्ति और विप्रकर्ष की प्रवृत्ति संस्कृत से अपभ्रंश तथा हिन्दी में आई है। यह विशेषता संस्कृत अर्ध तत्सम या तत्सम शब्दों में पाई जाती है।

जैसे —	रत्न	>	रत्तन	>	रतन
	वर्ष	>	वरिस	>	बरस
	नित्य	>	नित्त	>	नित
	त्यज	>	तज	>	तज
	लोक	>	लोअ		लोग

६. अकारण सानुनासिकता की प्रवृत्ति — आधुनिक भाषाओं में दिखाई देने वाली अकारण सानुनासिकता की प्रवृत्ति प्राकृत, अपभ्रंश और अवहट्ट के

माध्यम से हिन्दी में आई है जैसे—

उत्साह	>	उँच्छाह	>	उछाह
द्यूत	>	जुआ	>	जुआँ
उपवास	>	उपांस	>	उपांस
अश्रु	>	आंस	>	आँसू

७. स्वर संकोचन की प्रवृत्ति— एक प्रकार से यह समीकरण-प्रक्रिया ही है:

कोटिशीर्ष	>	कोअसीस	कौसीस
सम्बपुर	>	सम्मउर	सामोर
उत्तिष्ठ	>	उइट्ठ	उठ

८. द्वित्व या संयुक्त व्यंजन के सरलीकरण की प्रवृत्ति-द्वित्व या संयुक्त व्यंजन को एक व्यंजन करने की प्रवृत्ति बहुत अधिक है, जैसे —

आत्मनः	>	अप्पण	>	अपन
सर्वे:	>	सव्वे	>	सबे
मत्स्यहाटक	>	मच्छहट	>	मच्छहटा

९. दीर्घीकरण की प्रवृत्ति :— यह प्रवृत्ति संस्कृत से प्राकृत और प्राकृत से हिन्दी तथा अपभ्रंश में चली आई है, जैसे :—

संस्कृत राजन्	>	प्राकृत राज	>	अपभ्रंश राअ	>	हिन्दी राजा
,, चन्द्रमस	>	,, चन्द्रमा	>	,, चन्दआ	>	,, चन्दा
,, कुष्टिन	>	,, कुट्टिन	>	,, कुत्थि	>	,, कोढी

हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास

आर्य-भाषाओं के तीन युग हैं जिन में से विकास प्राप्त करती हुई संस्कृत से अनेक भाषाओं की उत्पत्ति हुई है। प्राचीन युग ई० पूर्व २५०० से ५०० तक, मध्य युग ई० पूर्व ५०० से १००० ई० तक और आधुनिक युग १००० ई० से आज तक। प्राचीन युग में वैदिक संस्कृत का विकास हुआ। ऋग्वेद में इन्द्र, मित्र, वरुण, उषस आदि देवताओं की स्तुति विषयक मंत्र है। कर्मकाण्ड के मन्त्र (गाये जाने वाले) सामवेद में संकलित हैं। बाद के चौथे वेद अथर्ववेद में भी अनेक सूत्रसंकलित किये गए। बाद में ब्राह्मण ग्रंथ और उपनिषदों की रचनाएँ हुईं। मध्ययुग में लौकिक संस्कृत का विकास हुआ। संस्कृत अर्थात संस्कार की गई या सुधारी गई भाषा का प्रचलित रूप ई० पूर्व पाँचवीं 'शताब्दी' से मानी जाती है। इसी समय पाणिनि ने अष्टाध्यायी की रचना की। अष्टाध्यायी में भाषा-प्रयोगों के सम्बन्ध के नियमों का सूक्ष्मता-पूर्वक विवरण है। तीन सौ वर्ष के पश्चात् पतंजलि ने महाभाष्य में व्याकरण के नियमों को और भी विस्तार के साथ समझाया। व्याकरणों के इन्हीं नियमों के अनुसार संस्कृत का वैभव पूर्ण साहित्य रचा गया है। कालिदास, अश्वघोष, भवभूति, भारवि माघ इत्यादि साहित्यकारों की लम्बी परम्परा दिखाई देती है।

प्राकृतें— साहित्य-रचना के लिए नियमों से जकड़ी संस्कृत का प्रयोग होता रहा। कालान्तर में वह शिक्षित विद्वानों और पंडितों के बीच की भाषा रह गई। लोक-व्यवहार में उसका प्रयोग संभव नहीं रहा। ई० पूर्व छटी शताब्दी में जन-भाषा के कई रूप देखने को मिलते हैं। देश में जो अभिलेख मिले हैं उनकी भाषा एक सी नहीं है। इस युग की साहित्यिक भाषा बौद्ध धर्म ग्रन्थों में मिलती है जिसे पालि कहा जाता है। विद्वानों के अनुसार यह भाषा मगध, उज्जैन, विंध्य प्रदेश, कोशल तथा मध्यदेश से सम्बन्ध रखती है। बुद्ध के जो वचन संकलित हुए हैं उनमें उपर्युक्त सभी क्षेत्रों के व्यवहृत शब्द मिलते हैं। अशोक के धर्मलेखों में जो जनभाषाओं के रूप मिलते हैं वे विभिन्न प्राकृत रूप हैं। मध्य एशिया में प्राप्त ईसा की दूसरी शताब्दी के लिखे अश्वघोष के नाटकों में प्राकृतों के विभिन्न रूप प्राप्त होते हैं। धम्मपद प्राकृत में लिखा हुआ ग्रंथ है। प्राकृत साहित्य-रचना का काल ई० पूर्व २०० से २०० ई० तक माना जा सकता है। संस्कृत के नाटकों के सामान्य पात्रों

के लिए प्राकृत का प्रयोग किया गया है। बाद में विद्वानों ने इनके व्याकरणों की रचना की और परिणाम स्वरूप ये प्राकृतें भी व्याकरणों के नियमों में जकड़ गईं। प्राकृतों का प्रयोग ईसा की पहली से पाँचवीं शताब्दी तक होता रहा है।

प्राकृत तथा अपभ्रंश :— वररुचि के मतानुसार प्राकृत के चार रूप हैं— महाराष्ट्री पैशाची, मागधी और शौरसेनी। महाराष्ट्री प्राकृत का क्षेत्र विदर्भ (बराड़) के आस पास था। पैशाची, प्राकृत पंजाब के क्षेत्र में बोली जाती थी। मागधी दक्षिण बिहार में व्यवहृत होती थी और शौरसेनी का प्रचलन ब्रज प्रदेश में था। सबसे प्रमुख महाराष्ट्री प्राकृत में रचे गये काव्यों में सेतुबन्ध (रावणवहो या दशमुह वहो), गउड वहो सतसई बहुत प्रसिद्ध हैं। संस्कृत नाटकों में प्राकृत के छन्द इसी में मिलते हैं। पैशाची की कोई रचना उपलब्ध नहीं है। कुछ विद्वानों के अनुसार गुणाढ्य की वहुकहा (बृहत्कथा) पैशाची की रचना है। शौरसेनी मध्यदेश की प्राकृत थी जहाँ संस्कृत का ही प्रभुत्व था। फलतः इस प्राकृत पर संस्कृत का यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। संस्कृत के नाटकों में विदूषकों तथा नारियों के संवाद इसी भाषा में हैं। बुद्ध ने अपने उपदेश पाली में दिये। संस्कृत और मागधी प्राकृत के योग से विकसित अर्द्धमागधी प्राकृत में महावीर ने उपदेश दिए। अर्द्धमागधी कोसल की भाषा है। इस भाषा में पश्चिम की शौरसेनी और पूरब की मागधी प्राकृत का सम्मिश्रण हुआ था। इसमें जैन-ग्रंथों की रचनाएँ हुई हैं। प्राकृत में साहित्य-रचना होने के कारण बोलचाल की प्राकृत को अपभ्रंश (बिगड़ी हुई भाषा) कहा गया। कालान्तर में बोलचाल की अपभ्रंश को व्याकरण के नियमों में जकड़ा गया और साहित्य की रचनाएँ होने लगीं। व्याकरण-शास्त्रियों ने अपभ्रंश के विविध रूपों का उल्लेख किया है। मार्कण्डेय ने 'प्राकृत सर्वस्व' ग्रन्थ में नागर, उपनागर और व्राचड तीन अपभ्रंशों का उल्लेख किया है :—

नागरो व्राचडश्चोपनागरश्चेति तेत्रयः।
अपभ्रंशः परे सूक्ष्मभेदत्वान्न पृथङ्मता॥

—प्राकृत सर्वस्व ७।

मार्कण्डेय से ही यह पता चलता है कि कुछ विद्वान् २७ प्रकार की अपभ्रंश भाषा मानते हैं जिनके नाम हैं :— व्राचड, लाट, वैदर्भ, उपनागर, नागर बार्बर, अवन्त्य, पांचाल, टाक्क, मालव, कैकय, गौड, ओढ्र, वैवपश्चात्य, पांड्य, कौन्तल, सैंहल कलिङ्ग्य, प्राच्य, कार्णाट, कांच्य, द्राविड, गौर्जर, आभीर, मध्यदेशीय,

बैताल आदि। 'प्राकृत चन्द्रिका' में भी देश भेद से अपभ्रंश के २७ भेदों का उल्लेख है। लेकिन मार्कण्डेय के अनुसार जिन तीन भेदों को मान्यता दी गई है वही काव्यालंकार की टीका में भी दुहराई गई हैं—

स चान्यैरुपनागराभीरग्राम्यत्वभेदेन-
त्रिधोक्तस्तन्निरासार्थमुक्तंभूरिभेद इति

—टीका—काव्यालङ्कार २/१२

नागर अपभ्रंश पश्चिमी भारत में राजस्थान, गुजरात, मध्यभारत आदि में व्यवहृत होती थी। हेमचन्द्र के मतानुसार इसका विकास शौरसेनी प्राकृत से हुआ है। व्राचड सिंध में प्रयुक्त होती थी। उपनागर ऊपर की दोनों अपभ्रंशों का मेल है। उपनागर पश्चिमी राजस्थान तथा दक्षिणी पंजाब में प्रचलित थी। इन अपभ्रंशों का समय ईसा की छटी से दसवीं शताब्दी तक माना जा सकता है।

अपभ्रंश तथा भारतीय आधुनिक भाषाएँ :— इस प्रकार देश के विभिन्न भागों की बोलचाल की अपभ्रंश से विकसित आजकल की विभिन्न आर्य भाषाओं का जन्म हुआ है। भारतीय आधुनिक आर्यभाषाओं ने अपने क्षेत्र की अपभ्रंश और प्राकृत से नाम, धातु, प्रत्यय लेकर संस्कृत से शब्द भंडार समृद्ध किया है। मागध अपभ्रंश से बिहारी, बँगला, असमिया और उड़िया का विकास हुआ है। अर्धमागधी से पूरबी हिन्दी का, महाराष्ट्री अपभ्रंश मराठी का तथा शौरसेनी अपभ्रंश से हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती और पहाड़ी भाषाएँ विकसित हुई हैं। व्राचड अपभ्रंश सिन्धी तथा कैकय अपभ्रंश लहँदा और पंजाबी का जन्म-स्रोत है।

शौरसेनी प्राकृत की विशेषताओं को आत्मसात करके अवहट्ट—

शौरसेनी अपभ्रंश अथवा नागर अपभ्रंश समस्त उत्तर भारत में साहित्यिक भाषा स्वीकृत हुई। पश्चिमी शौरसेनी अपभ्रंश से ही ब्रजभाषा का आविर्भाव हुआ है। परवर्ती अपभ्रंश को अवहट्ट की संज्ञा दी गई है। साहित्यिक अवहट्ट के तीन प्रदेश थे— पश्चिमी, पूर्वी और मध्यदेशीय। "चौदहवीं" शताब्दी के आरम्भ से ही गुजराती, मराठी, बंगला आदि आधुनिक भाषाओं की स्वतन्त्र सत्ता दिखाई पड़ने लगती है। यही नहीं स्वयं मध्यदेश में भी राजस्थानी ब्रजभाषा, खड़ी बोली, अवधी, और मैथिली आदि बोलियों की निजी विशेषताएँ स्पष्ट होने लग जाती हैं।"

—हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग-डा० नामवर सिंह
पृष्ठ ८३-८४

अवहट्ट के दो रूप थे— पूर्वी तथा पश्चिमी। अवहट्ट परिनिष्ठित अपभ्रंश से भिन्न रूप प्राप्त कर चुकी थी लेकिन इसके मूल में पश्चिमी अपभ्रंश अर्थात् शौरसेनी अपभ्रंश की विशेषताएँ मुख्य रूप से थीं। पूर्वी अपभ्रंश की रचनाएँ— विद्यापति की कीर्तिलता, ज्योतिरीश्वर का वर्णरत्नाकर और दामोदर पंडित विरचित उक्ति-व्यक्ति प्रकरणम्। प्राकृत पैंगलम (वंशीधर) में पूर्वी और पश्चिमी दोनों का मिश्रण है।

अवहट्ट का नाम करण सन् १३२५ ई० में ज्योतिरीश्वर ठाकुर के वर्ण-रत्नाकर में हुआ है। अवहट्ट शब्द का दूसरा प्रयोग प्राकृत पैंगलम् के टीका-कार वंशीधर ने किया — "प्रथमोभाषा तरंङः प्रथमः आद्यः भाषा अवहट्ट भाषा यया भाषया अयं ग्रन्थो रचितः सा अवहट्ट भाषा तस्या इत्यर्थः— प्राकृत पैंगलम् पृ० ३—

विद्यापति ने भी अवहट्ट शब्द का प्रयोग किया है। वह अपनी भाषा को अवहट्ट भाषा कहता है—

सक्कय बाणी बुहअन भावइ।
पाउंअ रस को मम्म न पावइ।
देसिल वअना सब जन मिट्ठा।
तं तैसन जम्पओ अवहट्टा॥

— कीर्तिलता पृष्ठ १९–२२

अवहट्ट शब्द का चौथा प्रयोग संदेश रासक में अब्दुल रहमान द्वारा हुआ है—

अवहट्टय सक्कय पाइयंमि पेसाइयंमि भाषाए
लक्खण छन्दाहरणे सुकइतं भूसियं जेहि।

—संदेश रासक पृ० ६—

इस प्रकार अवहट्ट का प्रयोग पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों भागों के कवियों ने किया है। पूर्वी अपभ्रंश की रचनाएँ कीर्तिलता, वर्णरत्नाकर, प्राकृत पैंगलम् और उक्ति व्यक्ति प्रकरण है तथा पश्चिमी अवहट्ट में गुर्जर काव्य-संग्रह की रचनाएँ, प्राकृत पैंगलम, संदेशरासक, रणमल्ल छन्द आदि रचनाएँ प्रमुख हैं।

हिन्दी बोलियों का विकास :— मध्यदेश में राजनीतिक उथल-पुथल के कारण

कोई एक समृद्ध भाषा विकसित न हो सकी। इसके विपरीत पूरब तथा पश्चिम की हिन्दी बोलियाँ अधिक गति के साथ विकसित हुईं। मैथिली का विकास ब्रज, अवधी और खड़ी बोली की तुलना में बहुत पहले हो गया था क्योंकि मैथिली शासन की स्वतन्त्र इकाई रही और एक ही राजवंश के अन्तर्गत शताब्दियों तक शासन स्थापित रहा। यही दशा राजस्थानी के विकास में पाई जाती है लेकिन मध्यदेश में सोलहवीं शताब्दी में अकबर महान् के शासनकाल में ब्रज, अवधी तथा खड़ी बोली को समान रूप से विकास का अवसर प्राप्त हुआ। मध्यदेश की इन तीनों बोलियों को निरंतर परिमार्जित रूप प्राप्त होता गया। प्रत्ययों, विभक्तियों, परसर्गों, उपसर्गों तथा धातु रूपों के विकास की समान स्थितियाँ रहीं केवल ध्वनि-विकार तथा उच्चारण का छोटा मोटा भेद दिखाई देता है। अवधी और ब्रज के मिश्रित भाषा रूप ने हिन्दी के भक्ति काल और रीतिकाल के समुन्नत साहित्यिक अभिव्यक्ति की है। तुलसी और सूरदास दोनों ने क्रमशः अवधी तथा ब्रजभाषा का चरम उत्कर्ष प्रस्तुत किया है।

राजस्थानी :— यह भाषा हिन्दी का ही एक रूप है और सारे राजस्थान तथा मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र में व्यवहृत होती है। कुछ विद्वान् राजस्थानी का उद्‌भव नागर अपभ्रंश से, कुछ सौराष्ट्री से, कुछ मध्य देशीय शौरसेनी से तथा कुछ गुर्जर अपभ्रंश से मानते हैं। इसकी कई उपभाषाएँ हैं — मारवाड़ी ढूंढाड़ी, मालवी, मेवाती और बागड़ी। मारवाड़ी पश्चिमी राजस्थानी है। यह उपभाषा जोधपुर, बीकानेर, अजमेर, किशनगढ़, पालनपुर, जयपुर के कुछ भागों में बोली जाती है। इसकी काव्यभाषा डिंगल कहलाती है। बेलिक्रिसण रुक्मिणी री और ढोला मारूरादूहा इसकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। ढूंढाड़ी (जयपुरी) जयपुर किशनगढ़-टोंक और अजमेर के उत्तर-पूरब के भाग में बोली जाती है। सन्त-कवि दादू दयाल की वाणी इसी भाषा मे है। इस पर ब्रजभाषा, मारवाड़ी और गुजराती का प्रभाव है। मालवी मालवा में, मेवाती भरतपुर, अलवर और गुड़गाँव में, और बागड़ी डूंगर पुर तथा बाँसवाड़ा जिलों में बोली जाती है।

बिहारी :— इसका विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ है। यह समस्त बिहार और उत्तर प्रदेश के बनारस, गाजीपुर, बलिया, जौनपुर, गोरखपुर, देवरिया, आजमगढ़ और बस्ती जिलों में बोली जाती है। बिहारी की तीन बोलियाँ हैं :— मैथिली, मगही और भोजपुरी।

मैथिली :— बिहार के सभी जिलों में बोली जाती है लेकिन चंपारन और

सारन में इसका व्यवहार नहीं है। दरभंगा इसका केन्द्र है। इसकी लिपि तिरहुता है जिसमें पुराना साहित्य मिलता है। इसमें अब भी रचनाएँ हो रही हैं।

भोजपुरी :— राजा मिहिर भोज के द्वारा बसाये गये भोजपुर को इसका केन्द्र माना जाता है। यह चंपारन, छोटा नागपुर और उत्तर प्रदेश के वाराणसी तथा गोरखपुर जिलों में बोली जाती है। इस बोली के लोकगीत बहुत मधुर होते हैं। कबीर की कुछ रचनाओं में इसका प्रयोग मिलता है।

मगही :— भोजपुर (शाहाबाद) को छोड़कर बिहार में गंगा के दक्षिण में बोली जाती है। इसका विकास मागधी से हुआ है। इसमें साहित्य की रचना नहीं हुई है।

पहाड़ी :— हिमालय की तराई में नेपाल से शिमला तक के सभी क्षेत्रों में प्रयोग में आती है। इसके तीन वर्ग हैं :— पूर्वी, मध्यवर्ती और पश्चिमी।

पूर्वी पहाड़ी :— इसे नेपाली, गोरखाली और खसभाषा कहा जाता है। यह नेपाल की राजभाषा है और देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। इसमें समाचार-पत्रों तथा ग्रन्थों का प्रकाशन हो रहा है।

मध्यवर्ती पहाड़ी :— यह अलमोड़ा, नैनीताल और टेहरी गढ़वाल तथा गढ़वाल में बोली जाती है। इसमें गद्य और पद्य की रचनाएँ मिलती है। लिपि देवनागरी है।

पश्चिमी पहाड़ी :— यह उत्तर प्रदेश के जौनसार भांवर से लेकर हिमाचल, मंडी और चम्बा तक बोली जाती है। इसकी लिपिटक्करी है।

पूर्वी हिन्दी :— इसका दूसरा नाम कोसली है। अवध या कोसल से लेकर मध्य प्रदेश के बघेलखण्ड और छत्तीसगढ़ तक इसका प्रसार है। इसका उद्भव अर्द्धमागधी प्राकृत और अपभ्रंश स माना जाता है। पश्चिमी हिन्दी और भोजपुरी का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इसकी तीन उपभाषाएँ हैं :—

अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी।

अवधी— अवधी का व्यवहार उत्तर प्रदेश के लखनऊ, उन्नाव रायबरेली, सीतापुर, खीरी, फैजाबाद, गोंडा, बहराइच, सुलतानपुर, प्रतापगढ़, बाराबंकी, इलाहाबाद, फतेहपुर, कानपुर, मिर्जापुर, बांदा के पूर्वी खण्ड और जौनपुर में दिखाई देता है। अवध के दक्षिण पश्चिम प्रदेश अर्थात् राय बरेली, उन्नाव आदि की अवधी को बैसवाड़ी बोला जाता है। अवधी में उत्कृष्ट कोटि की साहित्यिक

रचनाएँ हुई हैं। कुतुबन की मृगावती, मंझन की मधुमालती, जायसी की पद्मावत उसमान की चित्रावली, नूरमुहम्मद की इन्द्रावती तुलसीदास का रामचरितमानस जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, रामलला नहछू, बरवै रामायण, १६ वीं शताब्दी में ख्वाजा अहमद की नूरजहाँ, मुहम्मद नसीर की चित्रमुकुट, यूसुफ जुलेखा, ईश्वरदास की सत्यवती कथा, २० वीं शताब्दी के द्वारिका प्रसाद मिश्र विरचित कृष्णायन जैसे ग्रन्थों का प्रणयन इस भाषा का वैभव सिद्ध करता है।

पश्चिमी हिन्दी :— शौरसेनी प्राकृत और अपभ्रंश का क्षेत्र मध्यदेश पश्चिमी हिन्दी का क्षेत्र है। इस हिन्दी पर संस्कृत का बहुत प्रभाव है। पश्चिम में अम्बाला पटियाला, मथुरा, और ग्वालियर, से पूर्व में कानपुर के कुछ आगे तक तथा दक्षिण में सागर, नरसिंहपुर और होशंगाबाद तक बोली जाने वाली बोलियाँ इसके अन्तर्गत आती हैं। इसकी पांच उपभाषाएँ हैं :—

ब्रजभाषा, नागरी हिन्दी (खड़ी बोली) बाँगरू कन्नौजी और बुन्देली। बाँगरू हरियाना क्षेत्र में बोली जाती है। इसमें साहित्य-रचना नहीं हुई है। कन्नौजी तथा बुन्देली भी केवल बोलियाँ हैं। इन दोनों में भी साहित्य रचना नहीं मिलती।

ब्रजभाषा :— शूरसेन प्रदेश और ब्रजक्षेत्र जो कि मथुरा-वृन्दावन के चारों तरफ चौरासी कोस तक अर्थात् धौलपुर आगरा अलीगढ और हाथरस तक व्याप्त है। भाषा की दृष्टि से अष्टछाप के कवियों से पहले ब्रजभाषा में रचना करने वाले किसी भी कवि का परिचय नहीं मिलता। नामदेव की ब्रजभाषा बदले रूप में हमारे सामने आती है। अतः अष्टछाप के कवियो और विशेषकर सूरदास के द्वारा ही ब्रजभाषा को सर्वोच्च स्थान मिला हैं। १४वीं और १५वीं शताब्दी में बैजूबावरा, हरिभट्ट, तानसेन आदि नाम आते हैं। लेकिन उनका कोई महत्वपूर्ण काव्य नहीं है। १६वीं शताब्दी से लेकर १८वीं शती तक का काल प्रमुख रूप से ब्रजभाषा साहित्य का काल है। सूरदास के पश्चात् तुलसीदास समय आता है। कवितावली, गीतावली, विनय पत्रिका को तुलसी ने सुन्दर ब्रजभाषा के माध्यम से प्रस्तुत किया है। रीतिकाल के कवियों में बिहारी, मतिराम, घनानन्द, रसखान एव सेनापति पद्माकर आदि ने ब्रजभाषा काव्य को बहुत समृद्ध किया है।

नागरी अथवा खड़ी बोली :— ब्रजभाषा के समान ही खड़ी बोली का जन्म शौरसेनी अथवा पश्चिमी अपभ्रंश से हुआ है। जैन आचार्यों बौद्ध सिद्धों, नाथ पंथियों एवं चारण कवियों आदि की रचनाओं को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि

खड़ी बोली का अस्तित्व बीज रूप में उसी प्रकार पाया जाता है जिस प्रकार ब्रजअवधी आदि अन्य भाषाओं का। यह दिल्ली मेरठ, मुजफ्फर नगर के आस-पास के क्षेत्र, पश्चिमी -रूहेलखंड, अम्बाला और पटियाला के पूर्वी भाग में बोली और लिखी जाती थी। लेकिन अब तो यह समस्त देश की राष्ट्र-भाषा है। विकास की दृष्टि से इस नागरी की पाँच स्थितियाँ हैं :—

(१) आरम्भिक स्थिति (२) सन्त कवियों के काव्य की भाषा (३) दक्खिनी हिन्दी (४) भक्ति तथा रीतिकालीन खडी बोली (५) आधुनिक खड़ी बोली।

१. आरम्भिक स्थिति :— यह सोचना भ्रान्तिमूलक है कि उर्दू मुसलमानों की ही भाषा है क्योंकि इसका भाषा - रूप अर्थात् खडी बोली का रूप अपभ्रंश में मिलता है :—

१. भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कंतु।
लज्जेजंतु वयंसिअहु जइ भग्गा घर एंतु॥
– हेमचन्द्र

२. गगन मंडल में गाय बियाई, कागद दही जमाया
छाछि छांडि पिंडता पीवी, सिद्धा माषण खाया।
—गोरखनाथ

३. नवजल भरिया मगणा, गयणिधड़क्कड़ मेहु।—गोरखनाथ
४. निगुन सागर अथक पसारा, वाका रंग सकल संसारा — गोरख बानी

चन्द्रवरदाई के कुछ समय बाद ही शारंगधर का 'शारंगधर पद्धति' नामक सुभाषितों का एक संग्रह मिलता है जिसमें खड़ी बोली का रूप दिखाई देता है :

झूठे गर्व मरामाथलि महसारे कंत मेरे कहे।
कंठे पात्र निवेश जाह शरठाँ श्री मल्ल देव विभुभू।

१३वीं शताब्दी में खुसरो की कविता में नागरी खड़ी बोली) का रूप आज की खड़ी बोली के निकट दिखाई देता है।

१. आये तो अंधेरी लाये जाये तो सब सुख ले जाये
क्या जानूं वह कैसा है, जैसा देखा वैसा है।
अरथ जो इसका बूझेगा, मुँह देखो तो सूझेगा
बात की बात ठठोली की ठठोली मरद की गाँठ औरत ने खोली।

२. एक थाल मोती से भरा, सबके सिर पर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाली फिरे, मोती उससे एक न गिरे।

२. सन्त कवियों के काव्य की भाषा:— नामदेव (१२७०-१३५०) के काव्य में ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों का प्रयोग मिलता है। नाथयोगियों की परम्परा में ही इस कवि ने खड़ी बोली का प्रयोग किया है:—

(१) पांडे तुम्हारी गायत्री, लोधे का खेत खाती थी।
लेकर ठेंगा टंगरी तोड़ी, लंगत लंगत आती थी॥
पांडे तुम्हारा महादेव धौल बलद चढ़ा आवत देखा था।
पांडे तुम्हारा रामचन्द्र सोभी आवत देखा था।
—नामदेव

(२) मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागे है मेरा॥
उठा बगूला प्रेम का, तिनका उड़ा अकास।
तिनका तिनका से मिला, तिनका तिनके पास॥
—कबीर।

(३) इस दम दा मेनूं कीये भरोसा आया आया न आया न आया।
यह संसार रैन दा सपना, कहीं देखा कहीं नाहिं दिखाया॥
सोच विचार करे मत मन में जिसने ढूंढा उसने पाया।
नानक भगतन दे पद परिये निसदिन राम् चरन चित लाया॥

(४) अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कहि गये, सब के दाता राम॥

३. दक्खिनी हिन्दी:— १३वीं शताब्दी में मुहम्मद तुग़लक़ के साथ जो साहित्यकार दक्षिण गये वे वहीं राज्याश्रित हो कर काव्यरचना करते रहे। बाद में बीजापुर, गोलकुण्डा, बीदर, बरार अहमदनगर में नगरी अर्थात् खड़ी बोली को राज्यभाषा बनाया गया था। दक्खिनी हिन्दी यही खड़ी बोली है। इसके प्रसिद्ध साहित्यकार हैं — बुरहानुद्दीन जानम, अली आदिलशाह शानीशाही शाहमीरांजी, बाबाशाह हुसैनी, मुहम्मद क़ुली क़ुतुबशाह, वली और सिराज

उदाहरण :—

(१) देखन हारा ज्ञान भीतर ।
शाहिद पर जे करे नज़र ॥
जीता सब जग करतब हारा ।
ओता लिखिया लेखन हारा ॥
जरह काना इस बनकर ।
सकता है सब लेखनहार ॥
—बुरहानुद्दीन जानब ।

(२) पिउ मूरत देखूँ सीने में
जब जागूँ रहूं सपने में
ला दीपक बरहा अपने में
तन जाये झक झक जीने में ।
—अली आदिलशाह शानीशाही

(३) यह सब आलम तेरा ।
राजुक समझूँ केरा ।
तुझ बिन और न कोय ।
न खालिक दोजा होय ॥
—शाह मीराँ जी ।

(४) यह जग नाहीं बाजपी बूझ ब्रह्मज्ञान
सो पानी सो बुलबुला सोई सरवरजान ॥
—शेख अब्दुल कुद्दूस गन्गोही

(५) पिया बाज प्याला पिया जाये ना ।
पिया बाज यक तल जिया जाये ना ॥
कहते पिया बिन सबूरी करूँ ।
कहा जाये अमा किया जाये ना ॥
—मुहम्मद क़ुली क़ुतुब शाह

४. हिन्दी की भक्ति तथा रीतिकालीन खड़ी बोली :— प्रौढ माध्यमिक काल में अनेक कवियों ने खड़ी बोली में रचनाएँ प्रस्तुत की हैं । रहीम की भाषा का रूप देखिए :—

(१) कलित ललित माला जवाहर खड़ा था ।
चपल चखन वाला चांदनी में खड़ा था ॥
—रहीम

(२) तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा प्यंड परान।
सब कुछ तेरा तूँ है मेरा यह दादू काज्ञान ॥
—दादू दयाल

(३) हिम्मत बहादुर भूप है।
घुम शंभु रूप अनूप है॥
दिल दानवीर पमाल है।
अखीर निकर का काल है॥
—पद्माकर

(४) सीतल (जन्म १७३०) द्वारा विरचित 'गुलज़ारे चमन' में नखशिखवर्णन और सौन्दर्य-चित्रण है। इसकी भाषा बिल्कुल आधुनिक काल की खड़ी बोली जैसी है। खड़ी बोली का यह पहला शृंगारिक ग्रंथ है जिसमें नखशिख सौन्दर्य एवं वस्त्राभूषण युक्त छवि की कल्पनाएँ बहुत मोहक है :—

मुख सरद चन्द पर श्रमसीकर जगमगैं नखतगन जोती से।
कै दल गुलाब पर शबनम के हैं कनके रूप उदोती से॥
हीरे की कनियाँ मन्द लगैं हैं सुधाकिरन कि गोती से।
आया है मदन आरती को धर कनक थाल में मोती से॥
—सीतल

(५) ललित किशोरी १९वीं शती के उत्तरार्द्ध में ऐसे कवि हुए हैं जिनकी खड़ी बोली की कविताओं को २०वीं शताब्दी की खड़ी बोली का मानक माना जा सकता है :—

जंगल में अब रमते हैं, दिल बस्ती से घबराता है।
मानुष गन्ध न भाती है, संग मरकट मोर सुहाता है।
चाक गरेबां करके दम दम आहें भरना आता है।
ललित किशोरी इश्क रैन दिन ये सब खेल खिलाता है।
—ललित किशोरी

५. आधुनिक खड़ी बोली :— २०वीं शताब्दी में खड़ी बोली ने काव्य-भाषा पर पूरी तरह से अधिकार कर लिया है। ब्रज तथा अवधी जो खड़ी बोली की वैभव पूर्ण सहोदरा थीं वे बुड्ढी होगई और खड़ी बोली की जवानी में

शबाब आया। खड़ी बोली गद्य तथा पद्य साहित्य का माध्यम बनीं। प्रेमचन्द ने उसे अत्याधुनिक रूप दिया। यहाँ आकर हिन्दी और उर्दू का भेद मिट गया। विकास को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उर्दू भाषा हिन्दी की ही शैली मात्र है। उर्दू के प्रसिद्ध विद्वान मुहम्मद हसन आज़ाद ने अपने ग्रन्थ 'आबेहयात में' पृष्ठ ६ पर यही बात कही है :— "इतनी बात तो हर शख्स जानता है कि हमारी ज़बान ब्रजभाषा से निकली है। ब्रजभाषा खास हिन्दुस्तानी ज़बान है" हिन्दी खड़ी बोली और उर्दू खड़ी बोली जैसी कोई अलग भाषाएँ नहीं हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुछ सामंतवादी साहित्यकारों ने हिन्दू संस्कृति के आधार पर हिन्दी और उर्दू के बीच खाई खोदने की कोशिश की है। बीसवीं शताब्दी में छायावादी काव्य में जो भाषा व्यवहार में लाई गई है, वह कृत्रिम सिद्ध हो चुकी है; अतः अधिक दिनों तक जीवित न रह सकी क्योंकि उसमें संस्कृत भाषा के तत्सम शब्दों की अधिकता दिखाई देती है, लेकिन इसके विपरीत प्रेमचन्द की भाषा सन् १९०५ से लेकर अब तक विकासमान होती हुई जीवन्तता का प्रमाण दे चुकी है। इस तरह यदि वास्तव में हिन्दी भाषा के विविध भेदों- हिन्दुस्तानी, दक्खिनी, रेख्ता, उर्दू आदि पर विचार किया जाय तो कोई भिन्नता नहीं मालूम देती। इन सभी रूपों का व्याकरण एक ही ढाँचे पर आधारित है। क्रिया, पद-विन्यास, वाक्यरचना, उपसर्ग, प्रत्यय परसर्ग सभी आधुनिक हिन्दी के ही समान हैं।

आधुनिक हिन्दी और आधुनिक उर्दू का मसला दोनों भाषाओं के साहित्यकारों ने सुलझा लिया है क्योंकि प्रेमचन्द के समान ही वे जनवादी साहित्य की रचना करते हुए एक दूसरे से शब्दभंडार ग्रहण कररहे हैं। उर्दू के प्रसिद्ध कवि ग़ालिब, नज़ीर अकबराबादी, मीरहाली तथा अकबर इलाहाबादी दोनों भाषाओं के साहित्यकारों के लिए आदर्श हैं। मीर की भाषा का नमूना देखिऐ :—

लोनी लग लग कर झड़ती है माटी।
आह क्या उम्र बेमज़ा काटी।

यही भाषा आज के उर्दू और हिन्दी के साहित्यकार अपना रहे हैं। इसी लिए अकबर इलाहाबादी की भाषा जनवादी साहित्यकारों के लिए आदर्श बन गई है :—

पड़ा है कहत बशर मर रहे हैं फाकों से
ख़ुशी हो क्या मुझे शबरात के पड़ाकों से।
बुझी हुई है तबीअत, यह रोशनी है फजूल
उतार लीजिए साहब चिराग़ ताकों से॥

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आज की हिन्दी और उर्दू का व्याकरण हमेशा की तरह एक है, क्रिया पद एक हैं और ८० प्रतिशत शब्दसमूह भी एक है। लिपियां भिन्न अवश्य हैं लेकिन यह भिन्नता दोनों की आत्मा और शरीर के विकास में बाधक नहीं हैं। आज का साहित्यकार २० प्रतिशत सेठ साहूकारों, सामंतों, पूंजीपतियों, नेताओं पंडितों और मुल्लाओं की भावनाओं की जरूरत पूरा नहीं करता बल्कि वह ८० प्रतिशत जनता के आम आदमी की भावना को महत्व देता है। यही कारण है कि वह देश की एकता का प्रतीक हो गया है। जनता की भाषा चाहे उर्दू हो चाहे हिन्दी एक ही है क्योंकि उसकी ज़रूरत को पूरा करने वाले शब्द भी एक ही आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थिति से विकास प्राप्त करते हुए व्यापक अर्थ का प्रसार कर रहे हैं। आज आम आदमी की भाषा के शब्द हैं :— लोग, घर, दौलत, आदमी, औरत. बीवी-बच्चे हल-बैल दिया बाती, खेत खलिहान, भूख, अकाल, बेकारी, मंहगाई मजबूरी, मज़दूरी, फसल, बीज, जुताई, बुआई, निराई, किसान, काम, काज, मज़दूर, छुट्टी, हड़ताल, तनखा, जाँच, पड़ताल, दबाव, तनाव, गेहूं, धान, तेल नमक, लकड़ी, दूध, पानी, छप्पर, झोंपड़ी, महल, सड़क, संसद, आडम्बर, आदर्श, बयान, गली, चौराहा, लीक, दीन, धर्म, ईमान, हरामी, पाजी, मन्दिर, मस्जिद, चबूतरा, अम्मा, बप्पा, बाबू, महाजन, अफसर, धांधली घूंस, काला धंधा, काला बाज़ार, नमकहराम, बदनाम, घी आटा, दाल सब्ज़ी रोटी, चक्की, चूल्हा, ठेला, तांगा, रिक्शा, रेल, मोटर, जहाज़, झंडा चुनाव, मंत्री, ढोल, नफीरी, तुरही, सारंगी, सूरज, चाँद, सितारे, रात, दिन, साँझ, सबेरे, दुपहर, शाम, दवा, दारु, मरीज, डाक्टर, दर्द, तकलीफ, प्यास, आस, निरास, साँस, खून, आँसू, अहसास, महसूस, मतलब, दुःख, सुख, दिक्कत घेरा, घिराव, बरस, महीना, पल, सियासत, हिमायत, मसला, मुद्दा, कस्बा, शहर, गाँव कबीला, ज़िन्दगी, ज़रूरत, ज्यादा, दोस्त, दुश्मन, बूढ़ा, जवान सख़्त मुलायम, तमाम, कोशिश, शामिल बावजूद, शक्ल, सूरत, चेहरा. मारपीट, वक्त, तारीख, गुलदस्ता, क़लम, पस्ती मस्ती, हस्ती, गुमनाम, अजनबी, हद,

हथियार, ग़लत, तस्लीम, दुनिया, जहान, मज़हब, आमदनी, नुक़सान, कायदा, मांग वकालत, इन्साफ, इनकार, काफी, ज़ोर शोर, विरासत, वारिस, चिराग़, मशाल, शहीद, कुर्बानी, कर्ज़, उधार, शगूफे, खातिर, मेहनतकश, पाकसाफ़, जोड़तोड़, इत्यादि ।

ऐसे ही हज़ारों शब्द हैं जो दोनों भाषाओं को एक सिद्ध करते हैं लेकिन अपने देश में राजनीतिक आधार पर दोनों में भेद पैदा करने की कोशिश की गई है। शिक्षा-संस्थाओं में हिन्दी और उर्दू को अलग-अलग पाठ्यक्रम में रखा जाता है। निहायत अफसोस के साथ यह लिखना पड़ रहा है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में अवधी, ब्रज, राजस्थानी के साहित्यकारों और उनकी रचनाओं की चर्चा तो की गई है लेकिन उर्दू के वैभव पूर्ण साहित्यकारों और उनकी रचनाओं का मूल्यांकन नहीं किया गया है। मेरे विचार से हिन्दी भाषा और साहित्य का अध्ययन तब तक अपूर्ण है जब तक कि उर्दू का ज्ञान समुचित रूप से नहीं प्राप्त किया जाता, इसी प्रकार उर्दू का ज्ञान बिना हिन्दी भाषा तथा साहित्य के अधूराही है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि दोनों भाषाओं के बीच खाई खादने वाले ही अधूरा ज्ञान रखने वाले भाषाविज्ञ है। ये सचमुच राष्ट्रभाषा के शत्रु हैं। ऐसे ही लोग देश की एकता को धक्का पहुंचाते हैं और भाषा के नाम पर राजनीति के दाँव पेच या हथकंडे अपनाते हैं। हिन्दी के भाषा-वैज्ञानिक विकास के लिए दोनों भाषाओं का ज्ञान आवश्यक है। मेरा सुझाव है कि विश्वविद्यालय-स्तर पर हिन्दी और उर्दू विभाग अलग अलग नहीं रहने चाहिए। वे एक इकाई के रूप में अध्यापन और शोध-कार्य करते हुए देश को एकता के सूत्र में बांधने में अधिक सफल हो सकते हैं। क्योंकि दोनों की भाषा-वैज्ञानिक समस्याएँ समान हैं और साहित्य की राजनीतिक, दार्शनिक तथा सामाजिक प्रवृत्तियाँ भी एक जैसी रही हैं।

